**सृजेता-महाकवि आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव**

## पुण्य-स्मरण

अन्तर्राष्ट्रीय 13वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी (विषय-जैन सिद्धांत परम विज्ञान, आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों से परे.....) के अवसर पर

## द्रव्यदाता (ज्ञानदानी)

(1) हिरणमगरी, सेक्टर-11 के उदार ज्ञानदानी (उदयपुर)
(2) श्री एम.पी. गाँधी एवं सुपुत्री डॉ. सीमा गाँधी
निवासी-383, हिरणमगरी, सेक्टर-11, आलोक स्कूल के पास, उदयपुर (राज.)
स्व. विद्यावती गाँधी की सप्तम पुण्यतिथि पर 11 हजार ज्ञान दान दिये।

ग्रंथांक-233 प्रतियाँ-500
संस्करण-2015 मूल्य-51/-

## प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

**आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त**
**(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान**
**द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा**
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

**(2) डॉ. नारायणलाल कछारा**
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

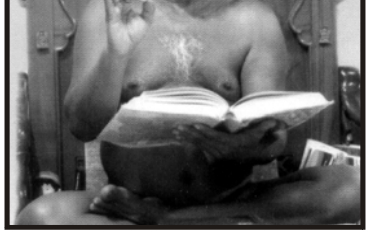

आचार्यपद आज्ञापत्र ।        ता॰ २३-३-९५

समस्त दिगम्बर जैन चतुर्विध संघ को सूचित किया जाता है कि मेरे शिष्
य परम आराध्य विद्वत मुनि उपाध्याय श्री सिद्धान्त चक्रवर्ती कनक
नन्दी जी को मैं अपनी खुशी उनकी विद्वता के देख कर आचार्य पद
देता हूँ, मेरी आचार्य शिष्य परंपरा में आप प्रथम आचार्य रहेंगे.
आप इस आचार्य पद पर रह कर जिन शासन की वृद्धि व
प्रभावना करें. आप इस पद के योग्य हैं, मुझे विश्वास है कि आप
इस पद की आचार्य कुन्दकुन्द के समान गौरव बढ़ायेंगे, कहीं
पर भी क्षति नहीं पहुंचायेंगे. अपने कल्याण के साथ पर का
भी कल्याण करेंगे। आपको दीक्षा दीक्षा देने का पूर्ण अधिकार
है व प्रायश्चित देने पद का भी अधिकार है अपनी तपोपद
को संभालकर रत्नत्रय का पालन करो आपको मेरा आशीर्वाद
है मैंने अपना आचार्य पद अभी नहीं छोड़ा है यह पद तो जिन
शासन की प्रभावना के लिये दे रहा हूँ, अपना पद तो महादेवी
पद्मावती जी का जिसको संकेत मिलेगा उसी को दिया जायेगा
मेरा पद मेरे पास सुरक्षित है समय आने पर उसको विसर्जित किया
जायेगा। आचार्य शिष्य परंपरा का क्रम यह रहेगा।

(१) आचार्य कनक नन्दी जी.

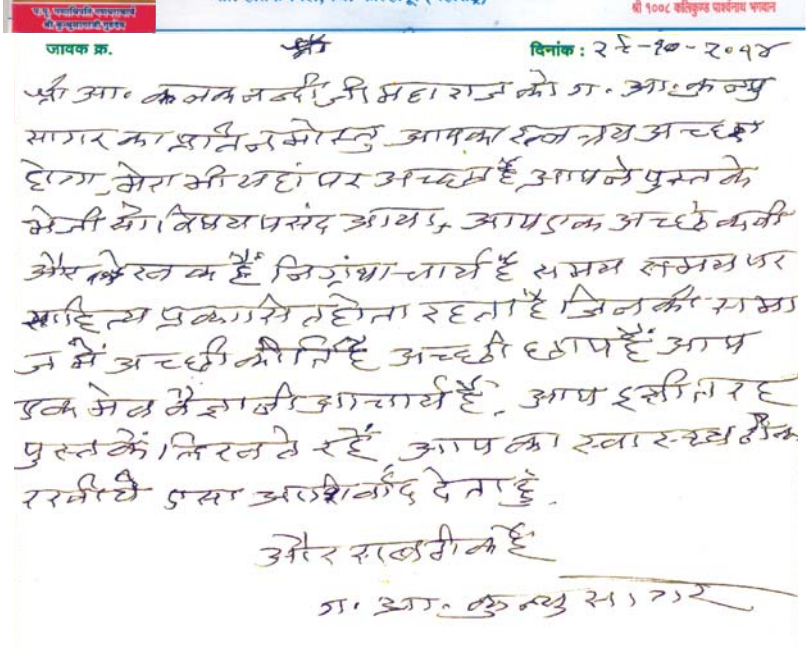

जावक क्र. श्री दिनांक : २६-१०-२०१४

श्री आ० कनकनन्दी जी महाराज को ग० आ० कुन्थु सागर का प्रतिनमोस्तु आपका रत्नत्रय अच्छा होगा, मेरा भी यहां पर अच्छा है आपने पुस्तके भेजी सो विषय पसंद आया, आप एक अच्छे कवी और लेखक हैं निग्रंथाचार्य हैं समय समय पर साहित्य प्रकाशित होता रहता है जिनकी समाज में अच्छी कीर्ति है अच्छी छाप है आप एक नेक वैज्ञानिक आचार्य हैं. आप इसी तरह पुस्तकें लिखते रहें आपका स्वास्थ्य ठीक रखीये ऐसा आशीर्वाद देता हूं.

और सब ठीक है

ग० आ० कुन्थु सागर

**श्री गणाधिपति गणधराचार्य कुन्थुसागर विद्याशोध संस्थान**
**हातकणंगले–रामलिंग, श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि, मु. पो. आलते – 416 123**
**ता. हातकणंगले, जिला–कोल्हापुर (महाराष्ट्र)**

जावक क्र. दिनांक : 29.10.2014

संयम पथ के राही, सारभूत है हर दिन,
ग्रन्थों के हैं अध्येता, फिर भी सब कहते निर्ग्रंथ।
करुणा करे सभी पर ऐसी, जैसे करे श्री भगवन्त,
चर्चा में रहती है चर्या, सच्ची सीधी है दिनचर्या,
आगम को देते पहचान, जैन धर्म है विज्ञान।
चरणों में झुकते विद्वान्, दुनिया को देते पैगाम,
आगम में है सारा ज्ञान, हे! योगीश्वर संत महान्,
दे दो मुझे ये वरदान, संयम पथ पर चलूँ अविराम।

**आचार्यश्री के चरणों में नमोस्तु-डॉ. एल.सी. जैन, जबलपुर**
**13-अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, आदिनाथ भवन,**
**सेक्टर-11, उदयपुर दिनांक 11.11.2014**

# समा है स्वाध्याय का

## आचार्यश्री कनकनन्दी जी श्रीसंघ की अनूठी स्वाध्याय पद्धति

**सृजन-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**(चाल : ये समा...समा है ये प्यार का.....)**

ये समा...समा है स्वाध्याय का...आत्म/(तत्त्व) चिन्तन का...
अंतरंग तप है आला...पञ्चम काल का...ये समा...(ध्रुवपद)...
धर्म-दर्शन-विज्ञान...समन्वय होता...2
जोड़ रूप ज्ञान होता...विविध विधा का...2...ये समा...समा है नवाचार का...(1)
साधु-साध्वी-वैज्ञानिक...कुलपति पढ़ते...2
न्यायविद् शिक्षाशास्त्री...विज्ञजन पढ़ते...2...ये समा...समा है गुरुकुल का...(2)
देश-विदेश से आते...प्रगतिशील ज्ञानी...2

हिरणमगरी, सेक्टर-11, उदयपुर, दिनांक 27.09.2014, रात्रि 8.48

# स्वाध्याय तपस्वी आचार्य कनकनन्दी गुरुवर ससंघ का कृतित्व

आर्यिका-सुवत्सल्यमती

**(चाल : चौपाई - जय हनुमान ज्ञान गुणसागर)**

दोहा- शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूँ प्रणाम।
कनकनन्दी गुरुश्रेष्ठ का, लो सुखकारी नाम।।

सर्व धर्म मैत्री के आप सूत्रधार, दिगम्बर-श्वेताम्बर संघ परिवार।
'जैना' अमेरिका, गायत्री परिवार, सत्य समता शांति के पक्षधर।।

'पीस नेक्स्ट' के अनुपम सदस्य, वि.वि. में मान्य हैं ग्रंथ।
पीएच.डी., एम.फिल., डी.लिट्. होता, शोधपूर्ण साहित्य पर।।

गद्यमय द्विशत (200) रचे है ग्रंथ, शोधपूर्ण व विज्ञान युक्त।
विद्वत् जन पाते विज्ञान, रहस्य ग्रंथों का अध्ययन कर।।

सीपुर अतिशय क्षेत्र महान्, वहाँ से निकली पद्य/(काव्य) की गंगा।
महाकवि है गुरुवर श्रेष्ठ, गीतांजली धारा सृजित तीस (30)।।

विश्वधर्म संसद तक, बजा है 'कनक' के ज्ञान का डंका।
सत्तावन (57) विश्वविद्यालय में, साहित्य कक्ष हुआ है स्थापन।।

देश के चतुर्दश प्रदेशों में, हुई त्रिंशत कक्षों की स्थापना।
शोधार्थी के शोध निर्देशक, गुरुवर के ही विद्वान् शिष्य।।

(12) बारह अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, तैतीस (33) धर्म प्रशिक्षण शिविर।

दिगम्बर श्रमणों की वैयावृत्ति हेतु, वैद्यों की है समायोजना।
स्वर्ण (मय) प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर, सम्मानित वैद्यों को (है) कीना।।

जैन-जैनेत्तर भक्त-शिष्य, स्व-प्रेरित हो करते दान।
आहारदान व औषधदान, साहित्य प्रकाशन हेतु ज्ञानदान।।

प्रभात-सुशील-पारसमल जी, छोटूलाल-दीपेश-गोदावत जी।
मणिभद्र खुशपाल आशादेवी, मयंक, अजय, गुरुचरण जी।।

नरेन्द्र-प्रद्युम्न अमेरिका वासी, मुकेश संजय दर्शना देवी।
कृष्णावत जी की भविष्यवाणी, मरणोपरान्त होगी कीर्ति।।

अनुपम चिंतक अनुभव ज्ञानी, ज्ञान की महिमा सबने मानी।
मादरेचा 'सेठी' अशोक आदि, सादर नमन करे विज्ञानी।।

## आचार्य गुरुवर श्री कनकनन्दी वंदना

### सर पे उनका हाथ है.....!

**-चेतना जैन**

**(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)**

गुरुवर हमारे साथ है, डरने की क्या बात है।
सदा सफलता साथ हमारे, सर पे उनका हाथ है।

जीवन मेरा तुमने बनाया, दिव्य गुणों से महकाया।
सच का हमें मार्ग बताया, जीवन को सरल बनाया।
माँ ने हमें जो सपना दिखाया, उसे सच कर तुमने दिखाया।
आशा का एक दीप जलाया, गिरकर उठकर चलना सिखाया।

हमारे तीर्थंकर का स्वरूप हमें, गुरु ''कनक'' रूप में दिखता है।
सत पथ पर चलते हो, कटु सत्य तुम कहते हो।
व्यक्तित्व निर्माण करते हो, राष्ट्र का गौरव बढ़ाते हो।
गुरुवर हमारे साथ है.....(3)

ज्ञान चक्षु ऐसे/तुमने है पाये, अमृत सुधा रस बरसाये।
''कनक'' मंथन जो कर पाये, तो गीतांजली लिख पाये।
हित-मित-प्रिय वचन तुम बोलो, गुण अवगुण से मानव तोलो।
जन-जन का आडम्बर जानो, इन सब में शिष्य (मानव) तुम पहचानो।
गुरुवर हमारे साथ है.....(4)

## ''विश्वगुरु श्री कनकनन्दी जी''

### 'अजय के तन-मन-प्राण'

**रचना-ब्र. अजय संघस्थ श्री गुरुदेव**

दुःखहरण मम गुरुदेव हे ऽऽऽ, सुखकरण मम गुरुदेव हे ऽऽऽ
विश्वगुरु ''कनकनंदी'' सुखधाम ऽऽऽ, स्वीकारो, मेरे परणाम प्रभो ऽऽऽ
स्वीकारो, मेरे परणाम ऽऽऽ स्वीकारो...।।टेक।।

मन वाणी में वो शक्ति कहाँ, जो महिमा तुम्हारी गान करे ऽऽऽ
हे! समताभावी अविकारी, हो! आप अलौकिक शक्ति से भरे
तुम्हमें जीवे, जन्मे तुम्हमें, और अंत करे तुम्हमें विश्राम
स्वीकारो मेरे...विभो स्वीकारो...।।1।।

चरण कमल का ध्यान धरूँ, और प्राण करे सुमिरण तेरा।

स्वीकारो मेरे परणाम, विश्वगुरु कनकनंदी जी सुखधाम
स्वीकारो अजय का परणाम। गुरु ऽऽऽ...।।3।।

नागपुर, स्वतंत्रता दिवस, 15.08.2014, मध्याह्न 3.20

# प.पू. मेहरबान श्री कनकनंदी जी गुरुदेव

## ऽऽऽ जयवन्त हों ऽऽऽ

**लाभान्वित-आर्यिका श्री सुहृदयमति जी एवं ब्र. अजय संघस्थ श्री गुरुदेव**

**(तर्ज : दिल ही दिल में ले लिया दिल.....)**

मिल गई राहें सुनी जो, गुरुवर वाणी आपकी।
आपका शरणा मिला, येऽऽऽ मेहरबानी आपकी।।टेक।।

चैन मिलता है उसे ऽऽऽ
चैन मिलता है उसे, जोऽऽऽ मन से गुरु का नाम लें
आप उसकी डोलती, जीवन की नैया थाम लें
ना किसी ने आज तक, महिमाऽऽऽ है जानी आपकी
मिल गई राहें सुनी...।।1।।

आपके ही द्वार से है ऽऽऽ मुक्ति का ये रास्ता
आपको भज के ही छूटे, कर्मों से गुरुऽऽऽ वास्ता
भेद पर का मैंने जाना, छबिऽऽऽ सुहानी आपकी
मिल गई राहें सुहानी, गुरुवर वाणी आपकी
आपका शरणा...।।2।।

आपश्री के ही ज्ञान से ऽऽऽ
आपके ही ज्ञान से, पुलकित है मेरा मन सुमन

# मेरी आत्मकथा-व्यथा-लक्ष्य

**शुभेच्छु-ब्र. अजय-संघस्थ आचार्यश्री कनकनंदी जी**

**(राग : उड़ चला पंछी रे हरी-भरी डाल से.....)**

सुगंधित बयार है, तू बहती चली जा
मेरा निवेदन, मेरे गुरुवर को किये जा।।टेक।।

भोगों की लालसा ने, जीवन तबाह किया
सुदृढ़ लक्ष्य ना रहा, भटकाव ही सदा रहा
लौकिक आकांक्षाओं में, सतत लगा रहा
धोबी के कुत्ता-सा, घर का ना घाट का रहा।।सुगं.....।।1।।

उथला ज्ञान पा करके, धर्म से धन चाहा
पूजा आडंबर सह, पंथाग्रह पोषित किया
जिससे ना पाया सुख, मन ग्लान-सा रहा
भौतिक सुख की चाह में, धर्म-दुरूपयोग किया।।सुगं.....।।2।।

पंडिताई करके मैंने, आत्म प्रवंचना ही किया
धन-मान लक्ष्य से, खुद ही को ठगता रहा
सुविज्ञ गुरु ने मुझे, महापंडित बनने प्रेरित किया
फलस्वरूप देखो, श्री-गुरु-सा मार्गदर्शक मिला।।सुगं.....।।3।।

कनकनंदी जी कृपा से, अब ना बाधा कोई
उपकार श्रीगुरु के, शुभ भाव आगमन होई
पूज्यश्री से विनय यही, आत्म-वैभव पा सकूँ
अबाध गति से रत्नत्रय पा, जीवन सफल करूँ

मेरी कुछ समस्याओं का, मैं कर रहा हूँ वर्णन।
जिससे मैं सतर्क रहूँ, करूँ आत्म कल्याण।।1।।

मेरी शरीर की प्रकृति है, अत्यंत पित्त व उष्ण।
अत्यंत संवेदनशील भी, शरीर-इन्द्रियाँ व मन।।2।।

विद्यार्थी अवस्था से ही कर रहा, हूँ अध्ययन व अध्यापन।
अधिक जागना व कम सोना, करता हूँ प्रायः प्रतिदिन।।3।।

अधिक पसीना भी आता है, मेरे शरीर से नौ मास।
गरमी गंदगी (दुर्गंधी) से, होती है समस्याएँ विशेष।।4।।

क्षुल्लक बनने से लेकर प्रायः, होंगे पन्द्रह वर्ष तक।
अधिक अंतराय भी हुए, आचार्य की पदवी तक।।5।।

समुचित व योग्य आहार भी, नहीं मिलता है हर दिन।
अधजला-अधपका, अधिक नमक खट्टा भोजन।।6।।

जिससे और भी अधिक पित्त, बढ़ गया तथाहि उष्ण।
जिससे वमन व चक्कर (बेहोशी/दंतक्षय) आना, पसीना सहित होता है तन।।7।।

हैजा व पीलिया रोग भी, हो गया है एक-एक बार।
दीर्घकाल तक उसका प्रभाव, रहा है शरीर पर।।8।।

अन्य के लिए जो योग्य हो, भोजन-पानी-औषध।
मेरे लिए (वे) अयोग्य भी होते, गैस-वातावरण व गंध।।9।।

कलह विसंवाद पक्षपात, अनुशासनहीन निन्दा व अपमान।
संकीर्णता रूढ़ी व अनुदारता, अयोग्य है शब्द प्रदूषण।।10।।

इन सब कारणों से मेरा भाव-व्यवहार, होता है अन्य से भिन्न।

ध्यान-अध्ययन के लिए, चाहिए स्वस्थ तन व मन।
इसी हेतु मैं सेवन करता हूँ, औषधि व शीतल/(स्वच्छ) स्थान।।15।।

द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार करता बाह्य तप-त्याग।
ध्यान-अध्ययन व शांति समता, सेवता हूँ वैराग्य।।16।।

आगम में मैंने पढ़ा, तथाहि किया मैं अनुभव।
ध्यान-अध्ययन आदि से, अधिक होता पावन भाव।।17।।

पावन भाव से ही अधिक, होती है कर्म-निर्जरा।
शांति-समता की भी वृद्धि होती, जिससे कर्म की निर्जरा।।18।।

ख्याति पूजा व लाभ हेतु नहीं, करता हूँ कुछ काम।
भीड़ जोड़ना व धन कमाना, नहीं है मेरा प्रयोजन।।19।।

आत्म कल्याण सहित जो, होता है विश्व कल्याण।
वैसा ही कनक आचरण करे, नहीं अन्य प्रयोजन।।20।।

## वैज्ञानिक ज्ञान से मुझे प्राप्त लाभ/(शिक्षाएँ)

### (वैज्ञानिक साहित्य, विदेशी वैज्ञानिक, टी.वी. चैनलों से मुझे प्राप्त लाभ)

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., छोटी-छोटी गैया.....)**

विज्ञान से मिल रही (है) मुझे अनेक शिक्षा, शोध-बोध-प्रयोग की विविध शिक्षा।

सत्यग्राही विनम्र व दृढ़ साहसी, धैर्यशील पुरुषार्थी व आत्मविश्वासी।। (1)

उदार प्रगतिशील व वैश्विक दृष्टि, विश्लेषण सहित समन्वय की दृष्टि।

संकीर्ण रूढ़ि परंपरा परे प्रवृत्ति, सत्य-तथ्य जानने की जिज्ञास वृत्ति।। (2)

इसी से होता है कर्मशक्ति का ज्ञान, जिससे ज्ञात होता जीव विज्ञान।
क्रम व्यवस्थित शोधपूर्ण होता ज्ञान, आगम ज्ञान का होता (है) समीक्षा ज्ञान।। (6)
जैनधर्म की श्रेष्ठता का होता सुज्ञान, भारतीय संस्कृति का होता विशद ज्ञान।
जिससे गौरव बोध विशेष होता, आत्मविश्वास मेरा दृढ़तर (भी) होता।। (7)
दीन-हीन-अहंकार-भाव न होते, आधुनिक दिखावा व ढोंग न होते।
भारतीयों के दोषों का होता सुज्ञान, दोष परिहार हेतु होता भी है ज्ञान।। (8)
शोध ग्रंथ लिख रहा हूँ अनेक विध, जिनका सदुपयोग हो रहा है बहुविध।
अध्ययन-अध्यापन (व) हो रहा है शोध/(पीएच.डी.),
विभिन्न देशों में हो रहा प्रचार विविध।। (9)
पूर्व-आचार्य भी करते थे ज्ञान, स्व-पर मत विभावना पटु मतिभ्यः।
स्व-पर मत व तात्कालीन ज्ञान युत, होते थे अकलंक वीरसेन समंतभद्रः।। (10)
भारत में विज्ञान का ज्ञान नहीं विशेष, जिससे समस्याएँ होती यहाँ विशेष।
मिलावट भ्रष्टाचार व गंदगी रोग, फैशन-व्यसन-ढोंग-दिखावा के रोग।। (11)
संकीर्ण रूढ़िवादिता भेद-भाव-विद्वेष, ईर्ष्या द्वेष घृणा बलात्कार संक्लेश।
पाश्चात्य अंधानुकरण स्व-संस्कृति त्याग, वेशभूषा भाषा शिक्षा भोगोपभोग।। (12)
संस्कृति हमारी पश्चात्य अपना रहे, वैज्ञानिक शोध से वे स्वीकार रहे।
भारतीयों में नहीं है स्व-संस्कृति ज्ञान, जिससे समझ न पाते वैज्ञानिक ज्ञान।। (13)
रटन्त स्वार्थपूर्ण तो पढ़ाई करते, अयोग्य अश्लील हिंसक टी.वी. देखते।
रूढ़िवादी स्वार्थनिष्ठ धर्म पालते, अस्त-व्यस्त-संत्रस्त जीवन जीते।। (14)

मैं तो चला उस पार चला...राग द्वेष मोह के बंधन छोड़ा/(तोड़ा)...
अन्य के क्षुद्र भाव-काम परे...सत्य-समता पाने मैं चला...(स्थायी)...

आत्म-उपलब्धि के हेतु मैं चला...ख्याति-पूजा-लाभ की आसक्ति छोड़ा...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश छोड़ा...क्षुद्र भाव-काम की सीमा मैं तोड़ा...(1)

अन्य क्या सोचे क्या कुछ भी बोले...क्या काम करे या क्या कुछ भी चाहे...
इसका संकल्प-विकल्प मैं छोड़ा...स्व-पर हित हेतु भाव में धरा...(2)

सत्य-समता व आत्म हित के बिना...कुछ भी न करूँ सुविवेक बिना...
आगम-अनुभव व स्वशक्ति युक्त...भाव-व्यवहार करूँ शुचि सहित...(3)

ऐसा ही करते तीर्थंकर केवली संत...क्षुद्रजन मानते उन्हीं भी गलत...
कोई भी महापुरुष हुए न आगे होंगे...जिनको सभी जन सही ही मानते...(4)

तम/(उल्लू) से न होता है सूर्य प्रभावित...वैश्या से न होती है सती प्रभावित...
भोगी से न होता है योगी प्रभावित...तथाहि न होऊँ मैं क्षुद्र से प्रभावित...(5)

धूलि उड़ती हवा से न सुमेरू कभी...ईंधन जलती आग से न आकाश कभी...
अंधेरा से कभी न प्रकाश डरता...क्षुद्रजन से कनक न क्षुद्र बनता...(6)

महान् से यदि न होते क्षुद्र प्रभावित...क्षुद्र से क्यों होंगे महान् भी प्रभावित...
महान् जन से मैं होऊँ प्रभावित...क्षुद्र जन से मैं न होऊँ क्षुभित/(क्षुद्र)...(7)

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 06.11.2014, प्रातः 9.10
(यह कविता मुकेश जैन की जिज्ञासा के समाधान हेतु भी बनी)

## पर प्रपंच त्यागकर करूँ स्व-शोध-बोध-कथन

**(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., क्या मिलिये ऐसे लोगों से.....)**

अनादि काल से अनंत भवों में, पर का ही गुणगान किया मैंने।
पर को ही जाना पर को ही माना, भोगोपभोग व मोह को किया।। (1)

ध्यान-अध्ययन व शोध-बोध ही करूँ, मनन-चिंतन व कथन भी करूँ।। (5)
तन-मन-इन्द्रियादि नहीं है मम रूप, यह सब कर्मज है विकारी रूप।
मैं तो अमूर्तिक व चिन्मय रूप, शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय रूप।। (6)
तीर्थंकर-गणधर-आचार्य-पाठक, साधु-साध्वी व मुमुक्षु-श्रावक।
इन भावों से ही बनते सच्चे साधक, क्रमशः करते परम आत्म-विकास।। (7)
यह है परम आध्यात्मिक रहस्य, समता शांति आत्मोपलब्धि रहस्य।
इस हेतु ही 'कनक' करे सदा प्रयास, अन्य सब में न आता है रस।। (8)

उदयपुर, हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 31.10.2014, रात्रि 9.05

## अन्य लोग मुझें क्यों नहीं समझ पाते

### (विद्यार्थी तथा विकास चाहने वाले के लिए त्यजनीय दुर्गुण)

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)**

राग द्वेष मोह (व) स्वार्थ काम से, ईर्ष्या घृणा तृष्णा (व) अनुदार से।
अनुभवहीन (व) अज्ञान भाव से, समझ न पाते मुझे क्षुद्र भाव से।। (1)

मेरे भाव इनसे भिन्न होते, उदार व्यापक/(अनुभव) सहित होते।
स्व-पर उपकार सह ही होते, विश्व कल्याण युक्त पावन होते।। (2)

आगम का सूक्ष्म ज्ञान न होता, अनेकान्त का भान न होता।
अलौकिक गणित से शून्य होते, कर्म सिद्धांत को (भी) नहीं जानते।। (3)

गुणस्थान मार्गणा व वस्तु-व्यवस्था, संस्कृत प्राकृत व श्रेष्ठ-भाषा।
विज्ञान व आयुर्वेद भी नहीं जानते, ब्रह्माण्डीय ज्ञान से रहित होते।। (4)

नहीं जानते हैं मनोविज्ञान, सामुद्रिक, शास्त्ररूपी अंग-विज्ञान।
अष्टांग-निमित्त को नहीं जानते, न्याय राजनीति को नहीं जानते।। (5)

कार्य-कारण को (भी) नहीं जानते, निमित्त-उपादान को नहीं जानते।

कर्त्तव्य-निष्ठा से रहित होते, अनधिकार पूर्ण काम करते।
मनमानी पूर्ण काम वे करते, कट्टर हठग्राही संकीर्ण होते।। (10)

दिखावा आडम्बर सहित होते, सरल-सहज-मृदु न होते।
आग लगने पर कुआँ खोदते, हानि होने पर ही कभी मानते।। (11)

इससे विपरीत है मेरी प्रवृत्ति, अनुभवपूर्ण उदार वृत्ति।
इससे अन्य मुझे न समझ पाते, देरी से कोई-कोई समझ पाते।। (12)

सनम्र सत्यग्राही उदार जन, सरल-सहज व निःस्वार्थी जन।
श्रद्धा प्रधानी या प्रज्ञा प्रधानी, समझ पाते मुझे जो होते विज्ञानी।। (13)

जो मुझे समझते (वे) बनते शिष्य, समर्पण से लाभ लेते विशेष।
स्वेच्छा से करते (वे) विशेष सेवा, तन मन धन से करते सेवा।। (14)

अज्ञजन से मैं न करता द्वेष, समता-शांति से रहूँ विशेष।
स्व-पर-विश्व का हित मैं चाहूँ, 'कनक' सदा मैं शुचिता चाहूँ।। (15)

## पर से अप्रभावित होना चाहता हूँ
### (पर के कारण न बनूँ मैं पापी)

**-आचार्य कनकनंदी**

**(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)**

स्वतंत्र-स्वावलंबी (मैं) होना चाहता हूँ, पर से अप्रभावी मैं होना चाहता हूँ।
पर हेतु राग-द्वेष-मोह त्यागता हूँ, पर हेतु कर्म-बंध नहीं चाहता हूँ।। (स्थायी)

पर से प्रभावित मैं यदि होऊँगा, राग-द्वेष-मोह यदि मैं करूँगा।
उसी से कर्मबंध मैं ही करूँगा, उसका दुःखद फल मैं ही भोगूँगा।। (1)

रिमोट कंट्रोल से यथा टी.वी. चलता, चालक से यथा है वाहन चलता।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 20.09.2014, रात्रि 9.08

# निर्बन्ध-सीमातीत होना चाहता हूँ

-आचार्य कनकनंदी

**(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., तुम दिल की धड़कन.....)**

संपूर्ण सीमातीत मैं होना चाहता हूँ।
'सच्चिदानंदमय' मैं होना चाहता हूँ।।

रंग-रूप-सीमातीत यथा है आकाश।
तथाहि मेरा रूप है अक्षय-अनंत।। (स्थायी)

जाति-पंथ-परंपरा-क्षेत्र व भाषा से।
परे (मैं) होना चाहता हूँ संकीर्ण भावों से।।

निहारिकाओं से भी न आबद्ध आकाश।
तथाहि होना चाहता हूँ (मैं) सभी से निर्बंध।।

भेद-भाव से भी परे (मैं) होना चाहता हूँ।
सत्य-समतामय होना चाहता हूँ।। (1)

नैतिक-आध्यात्मिक (मैं) होना चाहता हूँ।
वैश्विक-हितचिंतक (मैं) होना चाहता हूँ।।

बौद्धिक-तर्कातीत (मैं) होना चाहता हूँ।
संवेदनशील साधक (मैं) होना चाहता हूँ।। (2)

तन-मन-अक्ष से परे चाहता हूँ।
द्रव्य-भाव-नोकर्म से परे चाहता हूँ।।

साधन से साध्य को मैं पाना चाहता हूँ।
साधन को बाधक न बनना चाहता हूँ।।

निर्मल निर्विकार होना चाहता हूँ।।
द्रव्य-भाव-नोकर्म से रिक्त शुद्ध रूप हूँ।
स्वयं में ही लीन रूप, निर्विकार रूप हूँ।। (स्थायी)
शुद्ध-बुद्ध-आनंद ही, मेरा स्वरूप है।
राग-द्वेष-मोह आदि, मेरा विभाव है।।
संकल्प जब तक मेरा होता रहेगा।
विकल्प तब तक, होता रहेगा।।
अतः संकल्प को मैं, त्याग रहा हूँ।
श्रद्धा से संकल्प को, पर मान रहा हूँ।। (1)
बादल विद्युत् व नाना रंग आकार।
आकाश के नहीं रूप, पुद्गल के विकार।।
संकल्प-विकल्प नहीं है मेरा स्वरूप।
टंकोत्कीर्ण ज्ञायक हूँ, शुद्धात्म स्वरूप।।
सच्चिदानंद बनने का, मेरा है संकल्प।
'कनकनंदी' न चाहे, अन्य कोई विकल्प।। (2)

## मैं विश्व के महानतम काम में रत हूँ

**-आचार्य कनकनंदी**

**(चाल : क्या मिलिये....., छिप गया कोई रे....., बहुत प्यार करते है.....)**

विश्व का महानतम् काम (मैं) कर रहा हूँ, स्व की उपलब्धि हेतु (मैं) रत हुआ हूँ।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि (को) त्याग रहा हूँ, आकिंचन्य स्वयंपूर्ण बन रहा हूँ।। (1)
दीन-हीन-अहंकार त्याग रहा हूँ, सरल-सहज मैं बन रहा हूँ।
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-द्वेष त्याग रहा हूँ, निर्मल-निर्विकार मैं बन रहा हूँ।। (2)

# पूर्ण साधना न होने के कारण

-आचार्य कनकनंदी जी

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., आत्मशक्ति से.....)**

मेरी भावना तो सतत होती है, समता शांति को पानी की।
मेरा परम तो लक्ष्य होता है, परम सत्य/(मोक्ष) को पाने का।। (1)

किन्तु द्रव्यक्षेत्र काल व भाव, नहीं मिले है अभी सर्व-उत्तम।
इसलिए मेरी भावना व लक्ष्य, पाने की साधना न होती उत्तम।। (2)

नहीं है मेरा उत्तम संहनन, वज्रवृषभनाराच के संहनन।
वज्र के समान अस्थि वेष्ठनादि, यथा हनुमान का संहनन।। (3)

पूर्ण स्वस्थ भी नहीं है शरीर, पित्तप्रकृति व शरीर गर्म।
दाह उत्पन्न होता है शरीर में, उल्टी चक्कर पसीना रोग विभिन्न।। (4)

उपवास आदि बाह्य तप न होते, गर्मी में तकलीफ होती विशेष।
गरम भोजन-पानी-वातावरण व, विहार निवास से होते रोग विशेष।। (5)

क्षेत्र भी अभी प्रदूषण सहित, मृदा जलवायु प्रदूषण युक्त।
मच्छर गंदगी बदबू सहित, धूल धुआँ विषाक्त गैस सहित।। (6)

इसी से मेरा स्वास्थ्य सही न रहता, उत्तम न होता ध्यान-अध्ययन।
आहार विहार निहार विश्राम, नहीं होता उत्तम व्यायाम-प्राणायाम।। (7)

काल भी अति विपरीत काल, हुण्डा अवसर्पिणी का पंचमकाल।
जिस काल में न होते केवली गणधर, ऋद्धिधारी मुनि श्रेष्ठ नारी नर।। (8)

साधु की सेवा वैयावृत्ति व्यवस्था, सदा न होती है अति उत्तम।
आदर सत्कार भक्ति शक्ति युक्त, नहीं करते सभी गृहस्थजन।। (9)

अनेक जन भी निंदा विरोध करते, विघ्न उत्पन्न भी करते नाना।
रूढ़ि संकीर्ण स्वार्थ कषाय सहित, गण-गणी से भी करते द्वेष।। (10)

केवलज्ञान भी न प्राप्त होता, नहीं मिलता है अभी परिनिर्वाण।। (14)

तथापि मेरा यह ही लक्ष्य है, अन्य सभी है मेरा साधन मात्र।
स्वात्मोपलब्धि ही मेरा परम लक्ष्य, 'कनक' की साधना है आत्म प्रत्यक्ष।। (15)

## लेखक की अन्तर्वेदना

परमेश्वर सत् स्वरूप होते हैं। (सचवं भगवं) (Truth is God & God is Truth) सत् स्वरूप होने से द्रव्य अपना कार्य करता है और सत् स्वरूप द्रव्य शोभा को प्राप्त होता है। सत्य ही विश्व में सारभूत है, अमृत स्वरूप है, शाश्वतिक है। सत्य के बिना विश्व एक समय के लिए भी स्थिर नहीं रह सकता है, उपलब्ध नहीं हो सकता है। सत्य ही सार्वभौम है। अभी तक जितने महापुरुष हुए हैं और होंगे वे सब सत्य को जानने के लिए, पाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। धर्म के द्वारा जो सत्य के शोधक होते हैं उन्हें तीर्थंकर, अरिहंत, तथागत (बुद्ध) पैगम्बर, मसीहा, ऋषि, मुनि कहते हैं। दर्शन द्वारा जो सत्य को जानने का पुरुषार्थ करते हैं उन्हें दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, मनीषी कहते हैं। विज्ञान के द्वारा जो सत्य को समझने का यत्न करते हैं उन्हें वैज्ञानिक कहते हैं। अपनी-अपनी योग्यता, क्षमता के कारण जो पूर्ण सत्य को प्राप्त कर लेता है वह स्वयं सत्य स्वरूप हो जाता है, तो कोई उस जीवन में पूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं कर पाता है। जो अपूर्ण सत्य को ही पूर्ण सत्य मानता है वह भी स्वयं पूर्ण सत्य स्वरूप नहीं हो पाता है। कोई इन्द्रिय एवं यंत्र के माध्यम से ही सत्य को जानना चाहता है तो वह भी पूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं कर पाता है। इसलिये सत्य को जानने के लिए, मानने के लिए एवं पाने के लिए जो पूर्ण विधान है उसका अवलंबन लेना चाहिए। इन्द्रिय प्रत्येक्षण, यंत्रों के अवलंबन, मनन, चिंतन, निनिध्यासन ध्यान, आत्मा का परिशोधनादि सत्य को जानने के विभिन्न उपाय हैं।

सत्यासत्य का परिज्ञान का उपाय बताते हुए पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादन किये हैं कि-

**जो ण पमाण णयेहि णिक्खेवेणं णिरक्खदे अत्थं।**

जीव अनेकांत एवं स्याद्वाद के द्वारा वस्तु-स्वभावात्मक धर्म को बिना परीक्षण किये स्वीकार नहीं करता है।

**लोके शास्त्राभासे समयाभासे च देवता भासे।**

**नित्यमपि तत्त्वरूचिना कर्तव्यममूढ़दृष्टित्वम्।। (26)** पु.सि.

लोक में शास्त्राभास में, धर्माभास में और देवताभास में तत्त्वों में रूचिवान् सम्यग्दृष्टि पुरुष को सदा ही मूढ़ता रहित श्रद्धान करना चाहिए। महान् तार्किक आचार्य स्वामी समंतभद्र भी अमूढदृष्टि अंग का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार उल्लेख करते हैं-

**कावथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।**

**असम्पृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढादृष्टि रूच्यते।। (14)** र.श्रा.

दुःखों के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि कुमार्ग में तथा कुमार्ग में स्थित मिथ्यादृष्टियों में मन से सम्मत नहीं होना, वचन से प्रशंसा नहीं करना तथा काय से विनय, भक्ति नहीं करना सो अमूढदृष्टि अंग कहा जाता है।

धर्म के नाम पर अधर्म को मानने वाले व उसका प्रचार-प्रसार करने वाले अनेक निहित स्वार्थी ''गोमुखव्याघ्र'' वाले धर्म के ठेकेदार लोग होते हैं। रविषेणाचार्य जैनरामायण (पद्मपुराण) में पाखण्डी, धर्मांध व्यक्तियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

**धर्मशब्द मात्रेण बहुशः प्राणिनोऽधमाः।**

**अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड चेतसः।।**

धर्म शब्द मात्र से बहुशः अधम प्राणी विचार जड़ चेतना से अधर्म का ही सेवन करते हैं।

सम्यग्दृष्टि सत्यधर्म को मानने के कारण एवं जानने के कारण व सत्यधर्म के प्रतिपक्ष मिथ्याधर्म को जानता है किन्तु मानता नहीं है। सम्यग्दृष्टि सम्यग्ज्ञानी अर्थात् यथार्थ ज्ञानी होने के कारण वह सम्यक्ज्ञान रूपी कसौटी में धर्म या धर्मात्मा का परीक्षण करके उसके यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान करता है-

**''न धर्मो धार्मिकैः विना''**

धर्मात्मा को छोड़कर धर्म का अस्तित्व हो ही नहीं सकता है। सत्य धर्म से युक्त जीव सत्य धर्मात्मा है और मिथ्या धर्म से युक्त जीव मिथ्याधर्मी है। धर्मात्मा धर्म के साथ-साथ धर्मों का भी परीक्षण करता है। धर्मात्मा के परीक्षण के लिए भी वह निम्नोक्त प्रणालियों को प्रयोग में लाता है। यथा-

**यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन ताप ताडनैः।**
**तथैव पुरुषं विदुषा परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा।।**

**(ज्ञानेन शीलेन दया समन्वये)**

जैसे स्वर्ण की परीक्षा घर्षण, छेदन, ताप, ताड़न से स्वर्णकार परीक्षा करता है उसी प्रकार सत्यनिष्ठ धर्मात्मा विज्ञ-पुरुष, धर्मात्मा की परीक्षा उसके त्याग, शील, सद्गुण, सत्क्रिया (चारित्र), सम्यक्ज्ञान तथा समन्वय दृष्टिकोण से करता है अर्थात् जो व्यक्ति त्यागवान्, शील संयुक्त, सद्गुण से मण्डित, सच्चारित्रवान्, सम्यग्ज्ञानी, दया परायण, अनेकांतात्मक समन्वय दृष्टि सम्पन्न होता है वह यथार्थ से धर्मात्मा है। उपरोक्त गुणों से रहित कोई भी यथार्थ से धर्मात्मा नहीं बन सकता है। जो यथार्थ से धर्मात्मा है वह यथार्थ धर्म का भी प्रचार-प्रसार तथा उपदेश कर सकता है। जो यथार्थ धर्मात्मा नहीं है वह कभी भी यथार्थ धर्म का उपदेश नहीं कर सकता है। क्योंकि जो अंतरंग में भाव होता है वही वचन से प्रगट होता है। मनोवैज्ञानिक नीतिकारों ने कहा है-**''वक्तृं वक्तः हि मानसः''** अर्थात् वचन अंतरंग भावों को प्रगट करता है। कदाचित् ढोंगी उपदेशक स्वार्थ सिद्धि करने के लिए धर्मानुसार उपदेश करने पर भी वह अंतरंग से अपनी स्वार्थ सिद्धि का ही विचार करता है। जैसे हिन्दू धर्मानुसार शकुनि, दुर्योधन के पक्ष में होते हुए भी अंतरंग में दुर्योधन के नाश करने का विचार करता रहता था। बगुला जैसे जलाशय में एक पैर पर खड़ा रहकर ध्यान का ढोंग मचाते हुए भी मछली का ही ध्यान करता रहता है। बिल्ली महामुनीश्वर के समान ईर्यापथ समिति से चलते हुए भी उसका ध्यान चूहे पर रहता है। इसी प्रकार जो

विष है। अर्थात् उसकी भावना अत्यंत दूषित है।

**दुर्जन परिहर्तव्यो विद्यायालंकृतोऽपिसन्।**
**मणिना भूषितः सर्प किमसौन भयंकरः।।** (चाणक्य नीति)

विद्या से अलंकृत होते हुए भी दुर्जनों का दूर से त्याग कर देना चाहिए। मणि से विभूषित भयंकर विषधर सर्प को दूर से त्याग किया जाता है।

हम एक दिगम्बर जैन साधु होने के कारण हमारा कोई शत्रु या मित्र नहीं है। जो साम्यभाव से रहता है वह श्रमण है। हम श्रमण होने के कारण हमारा परम धर्म समता है। समता धर्म में पक्षपात नहीं होने पर भी सत्यग्राही दृष्टिकोण रहता है। आचार्यों ने कहा भी हैं-

**पक्षपाते न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।**
**युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्य परिग्रहः।।**

मेरा वीर प्रति पक्षपात नहीं कपिलादि प्रति द्वेष नहीं, किन्तु जिनका वचन युक्ति युक्ति है उन्हीं का अनुकरण करो।

मुनियों का परम कर्त्तव्य मौनपूर्वक समता सहित आत्मकल्याण करना है। जन सम्पर्क को दूर करने के लिए वचन को सीमित करने के लिए तथा सत्यादि धर्म के पालन करने के लिए साधु वचन गुप्ति, भाषा समिति, सत्य धर्म का परिपालन करते हैं। बिना प्रयोजन अथवा दूसरों के प्रश्न बिना मुनि लोग वचन का प्रयोग नहीं करते हैं। परंतु दिगम्बराचार्यों की अनुज्ञा है कि जब धर्म के ऊपर किसी प्रकार का आक्रमण होता है तब धर्म की सुरक्षा के लिए मुनियों को बिना पूछे भी बोलना चाहिए। शुभचन्द्राचार्य, ज्ञानार्णव में इस तथ्य को प्रतिपादित करते हुए निम्न प्रकार कहते हैं-

**धर्म नाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धांतस्यविप्लवे।**
**अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपं प्रकाशने।।**

धार्मिक क्रियाओं के लोप होने पर सुआगम-सम्मत सिद्धांत का विप्लव होने पर बिना पूछे भी उनका कथन करने के लिए बोलना चाहिए। आचार्य जिनसेन स्वामी

इतना ही नहीं आचार्य रविषेण जैन रामायण पद्मपुराण में तीर्थंकर के अवतार का कारण बताते हुए उल्लेख करते हैं कि-

**आचाराणां विधातेन कुदष्टिनां च सम्पदा।**

**धर्म ग्लानि परिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः।।**

जब सम्यक् आचरणों का विध्वंस होता है मिथ्या पाखण्डियों की शक्ति, विभूति, संपत्ति वृद्धि होती है और धर्म में विभिन्न प्रकार की कुरीतियाँ प्रवेश कराके धर्म को हतप्रभ कर लेते हैं, उस समय में सत्य धर्म का उद्धार, प्रचार, प्रसार के लिए तीर्थंकर परमदेव धरापृष्ठ पर अवतरित होते हैं। दयालु परोपकारी मुनीश्वर दूसरों को कुमार्ग से हटाकर सच्चे मार्ग में लगाने के लिए सदय हृदय से दूसरों को उपदेश देते हैं। आचार्यों ने कहा भी है।

**''रूसउ वा परो मा वा विसं वा परियत्तऊ।**

**भासियव्वा हिया भासा सपक्खगुणकरिया।।''**

उवाच व वाचक मुख्य-

**''न भवति धर्म श्रोतु सर्वस्येकान्ततोहित श्रवणात्।**

**ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्धया वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति।।''**

**शंका**-यदि अविवेक की प्रचुरता से किसी को जिनेन्द्र भगवान् के वचनों में रूचि नहीं होती तो आप उसे क्यों उपदेश देने का परिश्रम उठाते हैं?

**समाधान**-यह बात नहीं है परोपकार स्वभाव वाले महात्मा पुरुष किसी पुरुष की रूचि-अरूचि को न देखकर हित का उपदेश करते हैं क्योंकि महात्मा लोग दूसरे के उपकार को ही अपना उपकार समझते हैं। हित का उपदेश देने के बराबर दूसरा कोई परमार्थिक उपकार नहीं है। ऋषियों ने भी कहा है-'उपदेश दिया जाने वाला पुरुष चाहे रोष करे चाहे व उपदेश को विष रूप समझे परन्तु हितरूप वचन अवश्य कहने चाहिए। उमास्वाति वाचक मुख्य ने भी कहा है, 'सभी उपदेश सुनने वालों को पुण्य नहीं होता है परन्तु हितोपदेश करने वाले को निश्चय ही पुण्य होता है।' सच्चे गुरु

**दोषान् कांश्चन् तान् प्रवर्तकतया प्रच्छाद्यगच्छत्ययं।**
**सार्धतैः सहसा म्रियेद्यदि गुरु पश्चात्करोत्येष किम्।।**
**तस्मान्मे न गुरुर्गुरुर्गुरुतरान् कृत्वालघुश्च स्फुटं।**
**ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणं सोऽयं खलः सद्गुरु।। (42)**

यदि वह गुरु-शिष्य के उन किन्हीं दोषों को प्रवृत्ति कराने की इच्छा अथवा अज्ञानता से आच्छादित करके प्रकाशित न करके चलता है और इस बीच में यदि वह शिष्य उक्त दोषों के साथ मरण को प्राप्त हो जाता है तो फिर यह गुरु पीछे क्या कर सकता है कुछ भी उसका भला नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह शिष्य विचार करता है कि मेरे दोषों को आच्छादित करने वाला वह गुरु वास्तव में मेरा गुरु (हितैषी, आचार्य) नहीं है, किन्तु जो दुष्ट मेरे क्षुद्र भी दोषों को निरंतर सूक्ष्मता से देख करके और उन्हें अतिशय महान् बना करके स्पष्टता से कहता है वह यह दुष्ट ही मेरा समीचीन गुरु है।

**विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशव।**
**रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरुक्तयः।।**

कठोर भी गुरु के वचन भव्य जीव के मन को इस प्रकार से प्रफुल्लित (आनंदित) करते हैं जिस प्रकार कि सूर्य की कठोर (संताप जनक) भी किरणें कमल की कली को प्रफुल्लित किया करती हैं।

**लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाः पुरा।**
**दुर्लभः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।।**

पूर्वकाल में जिस धर्म के आचरण से इस लोक और परलोक दोनों ही लोकों में हित होता है उस धर्म का व्याख्यान करने के लिए तथा उसे सुनने के लिए भी बहुत से जन सरलता से उपलब्ध होते थे परंतु तदनकूल आचरण करने के लिए उस समय

प्रत्येक प्राणी सत्य को जाने, माने एवं प्राप्त करे यह ही मेरी महती भावना है। क्योंकि जब तक जीव सत्य को नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक वह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता है। सुख प्राप्त करने का मार्ग है सत्य के मार्ग में चलना। प्रायः प्रत्येक काल में प्रत्येक क्षेत्र में ठगी, ढोंगी, प्रपंची, नकली व्यक्ति होते हैं। उनसे सतर्क रहना और असत्य से निवृत्ति होना ही धर्म है, नीति है, सदाचार है, शांति का आधार है। धर्म (संप्रदाय) से लेकर राजनीति एवं यहाँ तक कि आधुनिक विज्ञान तक में जो विकार है और उस विकार के कारण जीवों को जो दुःख, संताप, संक्लेश, पीड़ा, समस्या, अशांति मिलती हैं उसे देखकर, सुनकर एवं अनुभव करके मुझे बहुत ही पीड़ा होती है। अतः दूसरों की पीड़ा के साथ-साथ स्वयं की पीड़ा को दूर करने के लिए मैं मनसा, वचसा, कर्मणा सतत प्रयत्नशील हूँ। इस कारण मैं साधु बना हूँ। विभिन्न साहित्यों के अध्ययन में रत हूँ। सत्य को प्राप्त करने के लिए विनम्र प्रयत्नशील हूँ, बच्चों को, युवक-युवतियों को उदारवादी सत्य धर्म का प्रशिक्षण देने के लिए उन्हें कक्षा में एवं शिविर में पढ़ाता हूँ उन्हें आगे बढ़ाता हूँ, उनसे आहार लेता हूँ, उन्हें वात्सल्य भाव देता हूँ, शोधपूर्ण साहित्य लिखता हूँ। स्कूल, महाविद्यालय में प्रवचन देता हूँ, शिविर लगाता हूँ, साधुओं को अध्यापन कराता हूँ, प्रवचन देता हूँ। सबका उपकार हो, कल्याण हो, उद्धार हो ऐसी मेरी भावना है। किसी को भी किसी भी प्रकार कष्ट दूँ, ऐसी मेरी किंचित् भी भावना नहीं है। इस कृति को पढ़कर यदि किसी को भी कष्ट होगा तो वह स्व-कलुषित भावना से ही कष्ट को प्राप्त कर रहा है ऐसा सिद्ध होगा। तथापि सज्जनों के उदार, उचित, सत्य सुझावों का स्वागत है। इस कृति के सहायक, प्रकाशक को मेरा शुभाशीर्वाद। इस कृति को पढ़कर सर्व जीव सुखी बनें, उदार बनें, ज्ञानी बनें, सत्यनिष्ठ बने एवं सत्य स्वरूप बनें ऐसी महती शुभकामना के साथ-

**आचार्य कनकनंदी**

| | | |
|---|---|---|
| II. | परम पूज्य वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के चरणों में विनयांजली | 4 |
| III. | समा है स्वाध्याय का | 4 |
| IV. | स्वाध्याय तपस्वी आचार्य | 5 |
| V. | आचार्य गुरुदेव श्री कनकनन्दी वंदना | 6 |
| VI. | विश्वगुरु श्री कनकनन्दी जी | 7 |
| VII. | प.पू. मेहरबान श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव जयवन्त हो! | 8 |
| VIII. | मेरी आत्मकथा-व्यथा-लक्ष्य | 9 |
| IX. | मेरी कुछ समस्याएँ एवं सावधानियाँ | 10 |
| X. | वैज्ञानिक ज्ञान से मुझे प्राप्त लाभ/(शिक्षाएँ) | 11 |
| XI. | क्षुद्र व्यक्ति के कारण मैं संकल्प-विकल्प-संक्लेश क्यों करूँ? | 13 |
| XII. | पर प्रपंच त्यागकर करूँ स्व-शोध-बोध-कथन | 13 |
| XIII. | अन्य लोग मुझे क्यों नहीं समझ पाते | 14 |
| XIV. | पर से अप्रभावित होना चाहता हूँ | 15 |
| XV. | निर्बंध-सीमातीत होना चाहता हूँ | 16 |
| XVI. | संकल्प-विकल्प रहित होना चाहता हूँ | 17 |
| XVII. | मैं विश्व के महानतम् काम में रत हूँ | 17 |
| XVIII. | मेरी भावना एवं लक्ष्य के अनुसार | 18 |
| XIX. | लेखक की अन्तर्वेदना | 19 |

**परिच्छेद-1**

| | | |
|---|---|---|
| 1. | सरस्वती वंदना | 29 |
| 2. | मैं (अहम्) | 29 |
| 3. | शुद्ध निजात्म वंदना | 30 |
| 4. | स्व-स्वरूप-स्मरण | 31 |

13. मेरी भावना एवं सोचना 38
14. शांति सुधारस पायो 39
15. स्वभाव से अमरत्व मिलता है वर से नहीं 40
16. क्षमा धारो.....क्षमा करो..... 40
17. क्रोधादि का साम्राज्य चारों गतियों में 41
18. उत्तम क्षमा की महिमा 42
19. सत्य वचन 42
20. परम सार्वभौम सत्य सिद्धांत 43
21. भीख < दान < त्याग 44
22. भोग से पतन तो त्याग से उत्थान 44
23. निःस्वार्थ-स्वेच्छिक दान से बढ़ती है शांति-संपत्ति 45
24. अशुभ (पाप) शुभ (पुण्य) शुद्धोपयोग (मोक्ष) के फल 45
25. विरोधात्मक अलौकिक गुणधारी होते आध्यात्मिक जन 46
26. धर्म सहज (सरल) भी है क्लिष्ट (कष्टकर) भी है 47
27. उपलब्धि से भी सदुपयोग दुर्लभ 49
28. व्यवहार-आगम-आध्यात्म में शब्दों के अर्थ 54
29. शुद्ध-बुद्ध-परमानंद ही जीवों का धर्म 55
30. तन-मन-अक्ष परे-मेरा स्व शुद्ध स्वरूप 56
31. आध्यात्मिक जन होते हैं परम सकारात्मक विचारवान् 57
32. दोनों कानों एवं मन से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ 58
33. जीवन निर्वाह < निर्माण < निर्वाण 59
34. सम्यग्दृष्टि का स्वरूप 59
35. आध्यात्मिक संतों के जीवन प्रबंधन 60
36. धर्म केवल जीवन जीने की कला नहीं है, परन्तु जीवन-निर्माण व परिनिर्वाण के उपाय भी 61

45. संप्रदाय पंगु : विज्ञान अंधा 68
46. संप्रदाय धूर्त, राजनीति क्रूर 75
47. विचार मंथन 79
48. महान् एवं क्षुद्र बनने के उपाय 81
49. हर मानव पशु-पक्षी-कीट से महान् नहीं 82
50. संकीर्ण व स्वार्थी मानव न मानते गुणी सज्जनों को भी 83
51. अयोग्य व्यक्ति भी अन्य के दोषों को कैसे जानते 84
52. क्या केवल प्राचीन या अर्वाचीन होना गुण-दोष का मापदण्ड है? 84
53. पटना के रावण दहन की दुर्घटना से प्राप्त शिक्षाएँ 89
54. कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य 89
55. संकीर्ण-कट्टर धार्मिक तथा भद्र मिथ्यादृष्टि 92
56. अच्छे या बुरे भाव-व्यवहार के प्रमुख कारण 93
57. स्व-पर-विश्व-हितकारी लेखक 93
58. नव कोटि से स्वात्म भावना ही सर्वोत्तम 94
59. भारतीय है आध्यात्मिक विश्व संस्कृति 96
60. मेरा मूल्यांकन करता हूँ आध्यात्मिक दृष्टि से 97

**परिशिष्ट**

1. वैश्विक गुरुत्व की संदेशवाहक अंतर्राष्ट्रीय 13वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी प्रभावना सह-सम्पन्न 98
2. वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी के साहित्य का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर वैश्विक स्तर पर प्रकाशन हेतु निवेदन 109
3. भारतीय फिलासफी आत्मा पर केन्द्रित व प्राचीन है 112
4. आचार्यश्री कनकनन्दी जी का साधना परिचय-व्यक्तित्व एवं कृतित्व 113
5. आगामी 14वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी 115
6. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव की आरती I, II 117

केवल बोधि की परोक्ष भूता...भवभय भञ्जनी तुम्हें नमन...
तुम्हें नमन...सदा नमन...(1)

मोहतम हारिणी सत्य प्रकाशिनी...द्रव्य-तत्त्व की सुबोधिनी...
आत्म/(तत्त्व) बोधिनी मोक्ष प्रदर्शिनी...भव्य कमल की विकासिनी...(2)

भेद-ज्ञान दात्री विश्व तत्त्व बोधिनी...अनेकांतमय दिव्यवाणी...
सुदृष्टि दायिनी समता प्रदायिनी...सहिष्णु क्षमा की प्रबोधिनी...(3)

गुणस्थान मार्गणा स्थान बोधिनी...ध्यान-वैराग्य की संबोधिनी...
भावश्रुतमय आत्म स्वरूपिणी...'कनक' की ज्ञान प्रदायिनी...(4)

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 26.11.2014, प्रातः 6.20

# मैं (अहं)

**-आचार्य कनकनंदी**

**(चाल : तुम दिल की धड़कन....., बिन गुरु ज्ञान नहीं है.....)**

मैं हूँ सच्चिदानंद स्वरूप...सत्य शिव सुन्दर अमूर्त रूप...
द्रव्य भाव नोकर्म रहित रूप...तन-मन इन्द्रिय रहित रूप...

यथा आकाश नहीं नीला स्वरूप...अमूर्तिक अनंत अरूपी-रूप...
तथाहि मैं नहीं मूर्त स्वरूप...कर्म जनित सर्व विकार रूप...

श्रद्धा-प्रज्ञा से न मानूँ शरीर मेरा...व्यवहार से मानूँ शरीर मेरा...
तथाहि इन्द्रिय मन रागादि भाव...जन्म-मरण नहीं मेरा स्वभाव...

अनादि आबद्ध कर्म के कारण...संयोग हुआ मेरा तन व मन...
इन्द्रिय राग-द्वेष काम-क्रोधादि...जन्म-मरण-भय-रोग आदि...

यथाहि बादल नहीं होता आकाश...नीला पीला रंग बिजली प्रकाश...

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 05.11.2014, रात्रि 7.45

(यह कविता 'दि पॉवर ऑफ नॉउ' (शक्तिमान वर्तमान) लेखक-एक्हार्ट टाल्ल से भी प्रभावित है।)

## शुद्ध निजात्म वंदन

**(राग : ओमकार स्वरूपा....., शत-शत वंदन.....)**

हे! शक्तिपुञ्ज...हे! ज्ञानानन्द...हे! आत्मरूप...तुझे नमो तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! स्वयंभू...सनातन...विश्वरूप...अनादि अनिधन...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! सच्चिदानंद...हे! सत्य रूप...हे! अमूर्ताय...तुझे नमो...ऽऽऽ

हे! आत्मस्थिताय...हे! सर्वगताय...हे! निर्विकाराय...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! साम्यरूपाय...हे! वीतरागाय...हे! शिवरूपाय...तुझे नमो...ऽऽऽ

हे! अनन्ताय...हे! अविनाशाय...हे! शान्तरूपाय...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! निर्विकल्पाय...हे! निराकाराय...हे! ज्ञानरूपाय...तुझे नमो...ऽऽऽ

हे! अशरीराय...हे! मनातीताय...हे! चिन्मयाय...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! भेदरूपाय...हे! अभेदाय...हे! तर्कातीताय...तुझे नमो...ऽऽऽ

हे! ज्ञानरूपाय...हे! ज्ञेयरूपाय...हे! ज्ञातारूपाय...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! मोक्षरूपाय...हे! अमृताय...हे! ध्रुवरूपाय...तुझे नमो...ऽऽऽ

हे! विभुरूपाय...हे! प्रभुरूपाय...हे! सिद्धरूपाय...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

हे! द्रव्यरूपाय...हे! तत्त्वरूपाय...हे! रत्नत्रयाय...तुझे नमो...ऽऽऽ

हे! सर्वज्ञाय...हे! अजराय...हे! अमराय...तुझे नमूँ...ऽऽऽ

समता स्वरूप सर्वोदयमय, सच्चिदानंद का करूँ (मैं) स्वागत।। (1)

सत्व-रज-तम से शून्य स्व-स्वरूप (शुद्ध) का मैं करूँ सम्मान।
सत्य-शिव-सुन्दर सर्व शुभंकर, शुद्ध शरण का करूँ सम्मान।। (2)

संसार संसरण सम्पूर्ण शून्य को, करता हूँ मैं सदा स्मरण।
शौच संतोष संयम स्वरूप को, करता हूँ मैं सदा स्मरण।। (3)

सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्रमय, सार्वभौम शुद्धात्मा ही मेरी शरण।
सोऽहं स्वरूप स्वयंभू रूप, शिव रूप ही मम शरण।। (4)

सप्त तत्त्व में सर्वोच्च तत्त्वमय, शुद्ध-बुद्ध रूप ही मेरा स्वरूप।
षट् द्रव्य में सर्वोच्च द्रव्यमय, सिद्धात्म रूप ही मेरा स्वरूप।। (5)

स्याद्वाद कथन सप्तभंग में, सापेक्ष-स्वरूप की होती समीक्षा।
सर्व संकल्प-संक्लेश संक्षय से, स्वरूप सम्प्राप्ति ही 'कनक' की शिक्षा।। (6)

## ''सुधर्म महाकल्पवृक्ष''

**(राग : पायो जी मैंने....., बीज राख फल भोगवे.....)**

बोये जी मैंने सुधर्म वृक्ष बोये...
सम्यग्दर्शन मूल है जिसका...शाखा सुज्ञानमय होय।।ध्रु.।।

फूल है जिसका चारित्रमय...फल आत्मिक सुख होय।
आत्मविश्वासमय मूल होता...तत्त्व/(सत्य) श्रद्धान रूप होय।
अष्टमद सप्तभय विवर्जित...निर्मल आत्मिक होय।।

स्वयं का श्रद्धान शुद्ध होता...सच्चिदानंदमय होय।
द्रव्य भाव नोकर्म विरहित...शुद्ध-बुद्ध नित्य होय।।

सुज्ञान शाखा में होती उपशाखाएँ...संख्यासंख्य अनंत होय।

ऐसा वृक्ष पाकर 'कनक' तो...महान् कल्पवृक्ष पाये।
कल्पना बिना ही सुफल देता है...'कनक' धन्य-धन्य होय।।

## ''अशुभ त्यागो शुभ से शुद्ध बनो''

**(राग : चलो दिलदार चलो.....)**

चलो दिलदार चलो दया दान सेवा करो, स्वार्थ लोभ मोह छोड़ो उदार भाव धरो।
साधु साध्वी वृद्धजन पशु पक्षी रोगी जन, आहार औषधि से यथायोग्य सेवा करो।।(1)
सदाचार नीति पालो शोषण ठगी छोड़ो, परनिन्दा ईर्ष्या छोड़ो विनम्र भाव धरो।
तन मन स्वस्थ्य करो प्राणायाम योगा करो, भ्रमण नित्य करो प्रमाद दूर करो।। (2)
मद्य मांस द्युत छोड़ो फैशन दंभ छोड़ो, सादा जीवन जीओ उच्च विचार करो।
अध्ययन ध्यान करो संकीर्ण भाव छोड़ो, कृतज्ञ भाव धरो घृणा विद्वेष छोड़ो।। (3)
सत्य तथ्य को जानो गुणग्राही नम्र बनो, दीर्घदर्शी प्राज्ञ बनो सरल भाव धरो।
सौम्य शांत गुणी बनो अनुशासी शुचि बनो, हित मित प्रिय बोलो सत्यग्राही सदा बनो।।(4)
आत्मा परमात्मा जानो आत्मविशुद्धि करो, संयम भाव धरो परिग्रह भोग छोड़ो।
गुणस्थान पार करो आत्मतत्त्व को वरो, 'कनक' नित्य चाहे शुद्ध स्वरूप वरो।। (5)

## ''मेरी सर्व निवृत्ति की भावना''

### (आध्यात्मिक जीवन प्रबंधन की कविता)

**(राग : ओ रात के मुसाफिर.....)**

दिन रात मेरे स्वामी...मैं सतत यह चाहूँ।
स्वयं को (मैं) जानूँ-मानूँ...स्वयं को (मैं) ध्याऊँ-पाऊँ।।ध्रु.।।
सभी अन्य ज्ञेय बने...त्यजनीय तथा हेय।
उपलब्धि ही स्वयं की...बने सदा मम ध्येय।।

अपेक्षा-उपेक्षा त्यागूँ...त्यागूँ सर्व प्रतीक्षा।
ख्याति व पूजा त्यागूँ...रहे न कोई आशा।। (3)

हर जीव के ज्ञान...आचार भिन्न-भिन्न।
तथापि सभी प्रति...रहूँ मैं सदा साम्य।।

सत्य समता शांति...मेरी हो उपलब्धि।
इसी हेतु 'कनक'...आचरे हर विधि।। (4)

## जैन धर्म की अति विशेषताएँ-(गुणस्थान)

# आध्यात्मिक विकास ही यथार्थ विकास

सुनो! सुनो! हे दुनिया वालों जैन धर्म की अति विशेषताएँ।
जिससे तुम्हें ज्ञात होगा आत्म उन्नति की विशेषताएँ।। (1)

मिथ्यात्व है निम्न अवस्था, जिसमें न होता सत्य/(आत्म) विश्वास।
न होता है श्रद्धान इसमें, आत्म परमात्म व बंध व मोक्ष।। (2)

भौतिकता को ही जो सत्य मानते, तथाहि शरीर भोगोपभोग।
जन्म-मरण तक (ही) जीवन मानते, जीवन है भौतिक संयोग।। (3)

इसी भाव में जो जीव होते, वे होते निम्न स्तरीय जीव।
वनस्पति से कीट-पतंग, मानव पशु-पक्षी नारकी देव।। (4)

भले इनमें भिन्नता होती, नाम आयु गोत्र जाति देह से।
तथापि वे सब समान होते, मिथ्यात्व भाव दृष्टिकोण से।। (5)

सम्यग्दृष्टि होते जो जीव, वे करते हैं सत्य/(आत्म)/विश्वास।
पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव मानव तिर्यंच नारकी देव।। (6)

आय नाम जाति गति से भले, इनमें होती भिन्नता।

शत इन्द्र से पूजित होते हैं निर्ग्रंथ प्रभु तीर्थंकर।
निर्ग्रंथ साधुओं को भी, पूजते हैं चक्रधर।। (11)

केवल बाह्य लिंग परंपरा से यह नहीं है वर्णन।
अंतरंग परिणाम/(गुणस्थान) से युक्त बाह्य लिंगादि कारण।। (12)

जैन धर्म की यह आत्मिक दृष्टि, आत्मविकास करने हेतु।
आत्मविकास से मिलता मोक्ष, अतएव बना 'कनक' साधु।। (13)

# 24 (चौबीस) अनुप्रेक्षाएँ (चिंतन-भावना)

## (आध्यात्मिक दृष्टि से)

**(राग : कहाँ गये चक्री.....)**

**(1-2) अनित्य एवं नित्य/(ध्रुव) भावना-**

सत्य है शाश्वतिक उत्पाद व्यय ध्रौव्य होता।
अशुद्ध में अशुद्ध होता, शुद्ध में शुद्ध होता।।
सांसारिक सुख-दुःख भाव अनित्य होते।
शुद्ध आत्मिक ज्ञान-दर्शन-सुख शाश्वत होते।।

**(3-4) अशरण एवं शरण भावना-**

कर्म परतंत्र जीव के लिए, शरण नहीं कोई।
जन्म-जरा-मृत्यु से रक्षा न करे कोई।।
कर्म रहित आत्म-स्वभाव, परम शरणभूत।
देव शास्त्र गुरु धर्म जगत् में होते शरणभूत।।

**(5-6) संसार एवं मोक्ष का चिंतन-**

निश्चय से राग-द्वेष-मोह, होता है संसार।

आत्म-स्वभाव में होते हैं, अनत गुणगण।।

**(9-10) अन्यत्व-अभिन्न/(अअन्यत्व) भावना-**

द्रव्य-भाव-नोकर्म से अन्यत्व है जीव।
जन्म-जरा-मृत्यु से (है) रहित शुद्ध जीव।।
ज्ञान दर्शन सुख वीर्य से अभिन्न है जीव।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य से अभिन्न है शुद्ध जीव।।

**(11-12) अशुचि एवं शुचि अनुप्रेक्षा-**

अशुचि है राग द्वेष मोह तथा है शरीर।
द्रव्य-भाव-नोकर्म भी हैं अशुचिमय।।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं शुचि सम्पन्न।
दश धर्म व पंच महाव्रत हैं पावनमय।।

**(13-14) आस्त्रव एवं निरास्त्रव अनुप्रेक्षा-**

मिथ्यात्व कषाय अव्रत योग आस्त्रव।
पंच पाप सप्त व्यसन संक्लेश विभाव।।
आत्मस्वभाव है निरास्त्रव विभाव रहित।
सच्चिदानंदमय कर्म रहित।।

**(15-16) संवर एवं बंध चिंतन-**

राग द्वेष रहित है संवर भाव।
व्रत समिति गुप्ति है संवर भाव।।
इसी से विपरीत है बंध स्वभाव।
आस्त्रव बंध है संसार भाव।।

**(17-18) निर्जरा एवं संवर अनुप्रेक्षा-**

व्रत समिति गुप्ति से होती निर्जरा।
ज्ञान ध्यान तप से भी होती निर्जरा।।

ऊर्ध्वलोक में गति पुण्य से होती।।
पुण्य-पाप मिश्रण से मानव गति।
पाप-पुण्य क्षय से मोक्ष की प्राप्ति।।

**(21-22) बोधि दुर्लभ-मोह सुलभ-**

रत्नत्रमय बोधि होती है दुर्लभ।
सत्ता संपत्ति कुबुद्धि होती सुलभ।।
राग द्वेष मोह मायादि होते सुलभ
स्वात्मोपलब्धि बोधि नहीं सुलभ।।

**(23-24) धर्म-अधर्म चिंतन-**

वस्तु स्वाभावमय होता है धर्म।
सत्य समता सुख होते हैं धर्म।।
इसी से विपरीत, होता अधर्म।
'कनकनन्दी' को प्रिय आत्मिक धर्म।।

## ''दशविध-शक्ति की जागृति''

**(राग : सायोनारा....., तुम दिल की धड़कन.....)**

जागो-जागो महाशक्ति...जागो मेरी आत्मशक्ति।
जागो मेरी श्रद्धाशक्ति...जागो मेरी प्रज्ञाशक्ति।।
जागो मेरी क्षमाशक्ति[1]...नष्ट करो क्रोधशक्ति।
नम्रता-शक्ति[2] भी जागो...नष्ट करो मान-शक्ति।। (1)
आर्जव-शक्ति[3] भी जागो...कुटिलता नाश करो।
सत्य-शक्ति[4] तू भी जागो...मिथ्या-मोह नाश करो।।
जागो-जागो शुचि-शक्ति[5]...नाश करो तृष्णा-शक्ति।
सनम्र सत्यग्राही बनूँ...क्षमाशील शुचि बनूँ।। (2)

जागो मेरी ब्रह्म-शक्ति[9]...अनात्म-भाव का नाशो।
विस्तार करूँ स्वभाव...अनंत-अक्षय भाव।। (4)
जागो-जागो सुख-शक्ति[10]...सर्व दुःख को विनाश।
सच्चिदानंद मैं बनूँ...शुद्ध-बुद्ध शिव बनूँ।।
तेरी जागृति हेतु मैं...समता की साधना करूँ।
स्वाध्याय व त्याग करूँ...निस्पृहता व तप करूँ।। (5)
आप ही परम शक्ति...भौतिक शक्ति से परे।
अविनाशी हो अविकारी...ब्रह्माण्ड की परा-शक्ति।।
मुझमें ही मेरे द्वारा...प्रगट हो सर्व शक्ति।
आह्वान जागृत करूँ...'कनक' तुझे मैं पाऊँ।। (6)

## तीर्थंकरों के ऊपर हुए उपसर्गों से प्राप्त मुझे शिक्षाएँ

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)**

जन्म से दश अतिशय सम्पन्न, तीन कल्याणक के धारी।
चार ज्ञान चौसठ ऋद्धि सम्पन्न, अतुलित बल के (वे) धारी।। (1)
जन्म पूर्व से ही इन्द्रों से पूजित, समता-शांति के धारी।
गृहस्थ अवस्था में होते राजपुत्र, राजा महाराजा चक्र (के) धारी।। (2)
तथापि उन्हें लौकिक जन, मानते दीन हीन व अज्ञानी।
दुष्ट-अपकारी पागल मानकर, करते (हैं) उपसर्ग भी भारी।। (3)
तथापि समता-शांति से रहते, करते वे ध्यान व अध्ययन।
क्षमा धैर्य सहिष्णुता में रहते, करते (वे) तत्त्वों का चिंतन।। (4)
इसी से मुझे मिलती शिक्षा, यथाशक्ति गुण ग्रहण करने की।
लौकिक जनों से अप्रभावी होकर आत्म विशुद्धि सदा करने की।। (5)
यह कर्म की प्रक्रिया सदा ही, अनादि-अनंत तक रहेगी।

सुयोग्य वैद्य यथा करता है, रोगी की शल्य (भी) चिकित्सा।
तथाहि स्व-पर-विश्वहित हेतु, करूँगा सही (भी) चिकित्सा।। (10)

यह सब अपवाद मैं करूँगा, अद्वेष-घृणा से रिक्त।
आत्मविशुद्धि ही मुख्य करूँगा, 'कनक' हो दत्त चित्त।। (11)

## असंक्लेशित भाव से विश्व-कल्याण की भावना भाऊँ

**-आचार्य कनकनन्दी जी**

**(राग : कौन परदेसी तेरा....., रघुपति राघव....., तेरे प्यार का आसरा....., शत-शत वंदन....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)**

विश्वहित की तो भावना भाऊँ, अन्य के कारण न संक्लेश करूँ।
रोगी का उपचार सुवैद्य करे, रोगी के कारण रोगी न बने।।

मैत्री, प्रमोद व कारुण्य माध्यस्थ, चारों/(इन्हीं) भावों से सहित बनूँ।
द्वादश अनुप्रेक्षा व षोडस भावना, इन्हीं भावों से भावित बनूँ।।

सत्य-तथ्य को सर्वथा जानूँ, दोष-गुणों को सर्वथा मानूँ।
दोषी-निर्दोषी को यथार्थ जानूँ, गुण-ग्रहण करूँ दोषों को हनूँ।।

अनंत जीव हैं व अनंत संसार, पृथक्-पृथक् होते हैं भाव-व्यवहार।
सभी का सही होना नहीं संभव, स्वयं को सही बनाना संभव।।

स्व को सही बनाने में करूँ प्रयत्न, इसी हेतु सर्वथा मैं करूँ प्रयत्न।
प्रकाशित बनकर मैं प्रकाश करूँ, आत्महित से परहित मैं करूँ।।

ऐसा ही तीर्थंकर देव ने किया, राग-द्वेष-मोह सर्वथा त्यागा।
इसी से अनंत सुख उन्होंने पाया, 'कनकनन्दी' को भी यह ही भाया।।

## मेरी भावना एवं साधना

प्रदान करके पाना चाहता हूँ, भिक्षा की याचना नहीं करता हूँ।
शांति देकर शांति चाहता हूँ, प्रेम देकर प्रेम चाहता हूँ।।
ज्ञानी बनकर मैं ज्ञान देता हूँ, तोता के सम नहीं बोलता हूँ।
विज्ञापन मैं नहीं करता हूँ, स्वयं को विज्ञापित पूर्व करता हूँ।।
पर प्रकाशी मैं नहीं बनता हूँ, स्व-प्रकाशी मैं स्वयं बनता हूँ।
परोपदेशी/(रायचंद) मैं नहीं बनता हूँ, अंध पाषाण भी नहीं बनता हूँ।।
स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा लेता हूँ, आत्मिक शुद्धि से शक्ति चाहता हूँ।
सत्य-समता व शांति चाहता हूँ, 'कनक' स्वयं की प्राप्ति चाहता हूँ।।

## शांति सुधारस पायो!

**-आचार्य कनकनन्दी**

पायोजी मैंने शांति सुधारस पायो/(पीयो)।
जिसे पाने हेतु चक्री भी त्यजे, समस्त राज्य-वैभव।। (1)
शांति है सुख शांति है आनंद, शांति है आत्म-स्वरूप।
शांति है धर्म शांति है मर्म, शांति है समता-रूप।। (2)
शांति है प्रार्थना शांति-आराधना, शांति है साध्य-साधन।
शांति हेतु हर जीव यत्नशील, शांति हेतु हर कर्म/(हर धर्म)।। (3)
स्व-दोष शांति से मिलती है शांति, शांति है आत्म-वैभव।
शांति न मिलती बाह्य द्रव्यों से, शांति है चिदानंद-भाव।। (4)
क्रोध मान माया लोभ विवर्जित, शांति है शुद्ध-स्वभाव।
शुद्ध-बुद्ध व आनंद रूप, निर्मल चैतन्य-भाव।। (5)

शुद्ध-स्वभाव से तो अमर हूँ, स्वयंभू सनातन सच्चिदानंद हूँ।
जन्म-जरा-मृत्यु कर्मजनित है, कर्म तो पुद्गल गलन पूरण है।। (2)

आकाश कभी न गलता-पूरता, नहीं है काला-पीला-नीलादि होता।
बादल धूली आदि पुद्गल कारण, होते है गलन-पूरण-वर्ण।। (3)

आकाश सम मेरा शुद्ध-स्वभाव, स्वयंभू सनातन अनंत मान।
कृत्रिम वर्षा सम वर का मान, सीमित समय व शक्ति सम्पन्न।। (4)

कामना इच्छा व वर न चाहूँ, भौतिक उपलब्धि कुछ न चाहूँ।
समता शांति व सत्य मैं चाहूँ, सच्चिदानंदमय स्वभाव चाहूँ।। (5)

भौतिक कारण या वर प्राप्ति से, अमर होना संभव नहीं है।
अतः मैं स्वशुद्ध स्वभाव चाहूँ, 'कनक' आकिंचन्य निजात्मा चाहूँ।। (6)

## (क्षमा पर्व/पर्यूषण पर्व की उपलक्ष्य में)

# क्षमा धारो...क्षमा करो...

**(चाल : दुनिया में रहना है तो....., हेऽऽऽ रामऽऽऽ 2....., सायोनारा....., शत-शत वंदन....., यमुना किनारे.....)**

क्षमा धारो भाई क्षमा धारो...मन-वचन-काय से क्षमा धारो...
रत्नत्रय युक्त क्षमा धारो...क्रोध-मान-माया-लोभ छोड़ो...(1)

पहले स्वयं को क्षमा करो...मोह-क्षोभ रहित क्षमा धारो...
हर जीव प्रति क्षमा करो...क्षमा-याचना भी सभी से करो...(2)

अन्यथा वाणी से न होती क्षमा...क्षमा-भाव बिन न होती क्षमा...
मित्रों से ही क्षमा न होती क्षमा...क्षमावाणी कार्ड से/(में) न होती क्षमा...(3)

अक्षमा-भाव ही न करो उत्पन्न...स्व-भाव को ही न करो मलिन...
मोह-क्षोभ से भाव होता मलिन...मलिन-भाव से होती क्षमा मलिन...(4)

सक्लेश-कलह भी नाशनम्...वैर-विरोध भी प्रणाशनम्...(8)
उत्तम क्षमा तो मुनि धारे...आंशिक श्रावक-जन धारे...
संकल्पी हिंसा सम त्याग करे...व्यर्थ-संक्लेश-श्रावक न करे...(9)
उत्तम क्षमा का भाव धरे...श्रमण बनने का भाव धरे...
श्रमण बनकर साम्य धरे...साधना से मोक्ष प्राप्त करे...(10)
उत्तम क्षमादि हैं दश धर्म...आत्मिक-शाश्वतिक-विश्व-धर्म...
परस्पर में करते ये सहयोग...सम-उत्पन्न ये आत्म-भाव...(11)
सम्यग्दृष्टि में ये होते उत्पन्न...सर्वज्ञ में ये होते संपूर्ण...
आत्मिक वैभव मिले इसी से...'कनक' चाहे ये नवकोटि से...(12)

## क्रोधादि का साम्राज्य चारों गतियों में

देखो! देखो! देखो! सर्वत्र देखो! क्रोध-मान-माया-लोभ को देखो!
ईर्ष्या घृणा तृष्णा काम को देखो! आहार निद्रा भय/(मैथुन) संग्रह को देखो!!ध्रुव.

चतुर्गति चौरासी लाख योनि में देखो! निगोद से लेकर मानव में देखो!
भ्रूण से लेकर वृद्ध में भी देखो! बुद्धिहीन से लेकर बुद्धिमान में देखो!! (1)

देवों में लोभ की मुख्यता को देखो! नारकी में क्रोध की मुख्यता देखो!
तिर्यंच में मायाचारी की मुख्यता देखो, मनुष्य में अहंकार की मुख्यता देखो!! (2)

प्राधान्य भले कोई एक होती (है) कषाय, अन्य तीनों भी कषाय होती अवश्य!
अक्ष संचार से परिवर्तित होती कषाय, एक के परिवर्तन में अन्य हो जाती कषाय!! (3)

देव में लोभ (व) भोग होते अधिक, क्रोध से नारकी युद्ध करते अधिक!
मायाचारी से करते तिर्यंच पाप अधिक, अहंकार से करते पाप विशेष!! (4)

कम बुद्धि वाले भी तिर्यंच जीव, भोजन व भोग हेतु बनते (करते) क्रूर स्वभाव!
अन्य को मारते खाते व करते संभोग, नाचते गाते परिवर्तन करते रूप रंग!! (5)

**(चाल : उड़ चला पंछी.....)**

क्षमा धर्म महान् है, पापी नहीं धारते।
क्रोध-मान-माया-लोभ, से संक्लेशित होते।
राग-द्वेष-मोह से जो, द्रव्य कर्म बंधते।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव से, वे उदय में आते।। (स्थायी)

ईंधन ऑक्सीजन व, योग्य तापमान से।
अग्नि उत्पन्न होती हैं तीनों के योग से।।
(तथाहि) क्रोधादि उत्पन्न होते, अंतरंग-बाह्य से।
द्रव्यकर्म व परिणाम (व), निमित्त के योग से।। (1)

निमित्त से दूर रहो, यथा संभव हो।
निमित्त योग से भी, परिणाम साम्य/(शांत) हो।।
शांत/(साम्य) परिणाम से, कर्म होंगे क्षीण।
निमित्त न होगी हावी, शांत होगा परिणाम।। (2)

जिससे नवीन-पाप, बंध न होगा।
पूर्वार्जित-पाप-कर्म विनाश होगा।।
तन-मन-आत्मा भी होयेंगे स्वस्थ।
कलह-विसंवाद भी होयेंगे स्वस्थ।। (3)

क्रमशः स्वर्ग-मोक्ष की होगी उपलब्धि।
'कनकनन्दी' का लक्ष्य है आत्मोपलब्धि।। (4)

## सत्य वचन

**(चाल : दुनिया में रहना है तो)**

प्रलाप-अपलाप भी नहीं सत्य...क्रूर-कठोर-ठगी भी नहीं सत्य।। (4)

हितकर कठोर भी होता सत्य...गुरु का अमितकथन (भी) होता सत्य।
सूक्ष्म दूरस्थ कथन (भी) होता सत्य...सर्वज्ञ कथन सदा होता सत्य।। (5)

देखा हुआ से सुना हुआ श्रेष्ठ सत्य...हितोपदेशी-कथन होता सत्य।
द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ श्रेष्ठ सत्य...परमार्थ सत्य है सर्वथा श्रेष्ठ।। (6)

आध्यात्मिक सत्य ही परम ग्राह्य...लौकिक सत्य यथायोग्य ग्राह्य।
वचनातीत होता है परम-सत्य...'कनकनन्दी' का लक्ष्य परम-सत्य।। (7)

## परम सार्वभौम सत्य सिद्धांत

### (सत्य-समता-शांतिपूर्ण ही धर्म-न्याय-शिक्षादि यथार्थ)

**(राग : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा....., तुम दिल की धड़कन.....)**

रूढ़ी-परंपरा व स्वार्थ सहित, पालते जो धर्म कट्टरता युक्त।
सत्य-समता व शांति (से) रहित, पालते वे धर्म मक्कार युक्त।। (1)

ईर्ष्या-द्वेष-घृणा से वे युक्त रहते, कलह-निंदा से वे सहित होते।
हिताहित-विवेक से रहित होते, स्व-पर-अहितकारी कार्य करते।। (2)

इससे विपरीत है यथार्थ धर्म, सत्य-समता व शांतिकर सुधर्म।
ये तीनों रहित सो होता अधर्म, अधर्म से न मिलता शाश्वत शर्म/(सुख)।। (3)

यथार्थ धर्म युक्त जो होता कानून, ऐसा कानून ही हितकर कानून।
इससे भिन्न होता मिथ्या कानून, संकीर्ण स्वार्थ पूर्ण क्रूर कानून।। (4)

तथाहि परंपरा राजनीति व शिक्षा, नीति नियम संविधान विवक्षा।
भाव व्यवहार व कथन व्यवसाय, खेल कला संगीत विज्ञान विनिमय।। (5)

सुपात्र को दान देना धार्मिक-कर्त्तव्य।।

मोक्ष के हेतु त्याग है कर्त्तव्य। उत्तर-उत्तर-श्रेष्ठ तीनों है कर्त्तव्य।।

माँगने पर भीख/(भिक्षा) होता है प्रदान। स्वेच्छा आंशिक-त्याग होता है दान।। (1)

स्वेच्छा से सर्व विसर्जन है त्याग। अंतरंग-बाह्य-परिग्रहों का त्याग।।

भीख है दयादत्ति अभयदानमय। दान है शुभभाव धार्मिक भावमय।। (2)

त्याग करे है मुमुक्षु वैराग्यमय। शुभ से शुद्ध संयममयभाव।।

समर्थ-सुपात्र न होते भिक्षा योग्य। दान त्याग करो 'कनक' करे त्याग।। (3)

### त्याग धर्म दिवस के उपलक्ष्य में

## भोग से पतन तो त्याग से उत्थान

**(चाल :)**

त्याग धर्म महान् है, रागी नहीं करते। भोग-उपभोग हेतु, परिग्रह धारते।

इसी हेतु राग द्वेष मोह तृष्णा करते, हिंसा झूठ कुशील व चोरी आदि करते।

फैशन-व्यसन व आडंबर करते, शोषण मिलावट भ्रष्टाचार करते।

असि मसि कृषि व वाणिज्य सेवा करते, आरंभ-उद्योग व शिल्प-कला करते।

आक्रमण युद्ध व लूट-पाट करते, डकैत हत्या व बलात्कार करते।

शोषक-शोषित मालिक-मजदूर बनते, अन्याय-अत्याचार व कुपोषण बढ़ते।

इसी से असंतोष विप्लव रोष बढ़ते, तोड़-फोड़ गृहयुद्ध भेद-भाव बढ़ते।

अतएव करो त्याग अथवा करो दान, परस्पर उपग्रह सेवा सहयोग दान।

त्याग करो अंतरंग-बहिरंग परिग्रह, श्रमण बनकर करो ध्यान व अध्ययन।

पुण्य-बंध व पाप दूर करते, रोग-शोक-तनाव से दूर रहते।।

संकीर्ण स्वार्थी व भोगी जो होते, दुःख व तृष्णा से सहित होते।
संताप सहित (वे) पापबंध करते, अतृप्त इच्छा से असंतोषी होते।।

धर्म में यह सब वर्णन हुआ है, विज्ञान ने अभी शोध भी किया है।
संकीर्ण-स्वार्थी व भोगी जो होते, डोपामाइन का वे स्राव करते।।

जिससे तीव्र तृष्णा की जागृति होती, इच्छा से इच्छा की जागृति होती।
जिससे संतोष व सुख न मिलते, रोग-शोक व तनाव बढ़ते।।

कार्य करने की क्षमता भी घटती, शांति संपत्ति की न समृद्धि होती।
सेवादान जो स्वेच्छा से करते, ऑक्सीटोसीन का वे स्राव भी करते।।

डोपामाइन का भी होता संतुलन, सुख-संपत्ति का भी होता संवर्धन।
ऐसा ही होता (है) जो होते हैं दयालु, प्रसन्नचित्त व होते जो प्रेमालु।।

बिना माँगे जो देते हैं दान, क्षमा सहिष्णु से जो होते सम्पन्न।
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री से, प्राप्त न होता (सो) मिलता दान से।।

दया-दान-सेवा करो हे! मानव, 'कनक' चाहे सदा पावन भाव।
हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 09.10.2014, प्रातः 6.14

## अशुभ (पाप)-शुभ (पुण्य)-शुद्धोपयोग (मोक्ष) के फल

### (दुःख-अभ्युदय सुख-आत्मिक सुख)

**(चाल : यमुना किनारे....., रघुपति राघव....., शत-शत वंदन.....)**

अशुभ-शुभ व शुद्धोपयोग, पाप-पुण्यमय व आत्म-स्वभाव।
क्रमशः फल है अनंत-दुःख, अभ्युदय सुख व आत्मिक-सुख।।

मिथ्यात्व-कषाय-प्रमत्त-भाव, पंच-पाप सप्त-व्यसन अशुभ।

सम्यग्दृष्टि के भाव जघन्य-शुभ, श्रावक-श्रमण से अधिक शुभ।
श्रावक व मुनिव्रत समस्त शुभ, व्रत-समिति-सोलह-भावना शुभ।।

दान-दया-सेवा (व) परोपकार भी शुभ, अन्याय-अत्याचार त्यागना शुभ।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य भाव भी शुभ, तीर्थंकर प्रकृति सह अड़तालीस शुभ।।

अष्टम् गुणस्थान से प्रारंभ शुद्ध, केवली को होता संपूर्ण शुद्ध।
शुद्ध से संपूर्ण कर्म होता है क्षय, आत्म-वैभव मिले अनंत-अक्षय।।

अशुभ त्यजनीय शुभ ग्रहणीय, शुद्धभाव भी सदा स्मरणीय।
पंचम काल में शुभ ही श्रेय, शुभ अभाव में होगा अशुभ।।

पाप त्यजनीय पुण्य ग्रहणीय, पाप-पुण्य परे मोक्ष भी ध्येय।
सम्यग्दृष्टि करे ये सब श्रद्धान, 'कनकनंदी' करे सच्चा श्रद्धान।।

## विरोधात्मक अलौकिक गुणधारी होते आध्यात्मिक जन

**(राग : आत्मशक्ति से....., सायोनारा....., शायद मेरी....., भातकुली.....)**

जय हे! आध्यात्मिक महान्, अलौकिक गुणों से आप सम्पन्न।
असाधारण है आपके गुण, विपरीत गुणों से आप सम्पन्न।। (1)

धैर्य से होते आप वज्र समान, मक्खन के समान कोमल मन।
कमल के समान निर्लिप्त जीवन, आकाश के सम उदार चिंतन।। (2)

धरती समान हो! क्षमावान्, महावीर सम हो! शक्ति सम्पन्न।
सूर्य के समान हो! तेजवान्, हिम के समान शीतलवान्।। (3)

पराक्रमी आप हो! सिंह समान, हरिण के समान शांत जीवन।
स्वाभिमानी आप हो! गज समान, सुशिष्य समान विनयवान्।। (4)

बैल के सम आप भद्र स्वभावी, प्रकाश के सम मोहतम विनाशी।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 01.11.2014, रात्रि 10.07

# धर्म सहज (सरल) भी है क्लिष्ट (कष्टकर) भी है

## (ॐ ह्रीं सत्यसाम्यसुखाय नमो नमः)

वस्तु के शुद्ध स्व-स्वरूप को या सत् स्वरूप को या समता को या रत्नत्रयमय को या उत्तमक्षमादि को या सुख स्वरूप को या अहिंसादि को या मोक्ष (स्वतंत्रता, स्वाधीनता, असंयोगावस्था, निर्बन्धावस्था) को या जो धारण करने योग्य है या जो सबको धारण करे उसे धर्म कहते हैं।

उपर्युक्त समस्त धर्म/गुण/स्वभाव विशेषताएँ वस्तु (द्रव्य) में स्वाभाविक रूप में विद्यमान होने के कारण, पाये जाने के कारण, अवस्थान करने के कारण वे सहज, सरल, उपलब्ध हैं। इसके विपरीत अशुद्धता, असत्य, विषमता, दुःख, क्षोभ, क्लेश, परतंत्रता, बंध, संयोग, अक्षमादि भाव वस्तु में स्वाभाविक रूप में विद्यमान नहीं होने के कारण वे असहज, विषम, द्वंद्व, अप्रिय, असंतोषकारी, अशांतकारी है। तथापि यह जीव अपने वैभाविक भाव (मोह, अज्ञान, विषमता) के कारण असहज भावों को करता है, उसमें रचता है, पचता है, अनुभव करता, सुनता है, परिचित होता है इसलिये ये असहज भाव/वैभाविक भाव/अधर्म/कुकर्म/कदाचार/भ्रष्टाचार व्यवहार में, प्रायोगिक रूप में सुलभ है, सहज-सा है, सरल-सा है। इसके विपरीत सहज, शुद्ध स्वाभाविक भाव (धर्म-गुण) प्रायोगिक रूप में दैनिक जीवन में दुर्लभ है, कष्ट साध्य है, दुरुह है।

जैसे जल का स्वभाव तरल एवं शीतल होने के कारण जल सहज रूप में, सामान्य परिस्थिति में तरल एवं शीतल रहता है। परन्तु जल के वैभाविक भाव ठोस (बरफ) एवं उष्ण होने के लिए यथाक्रम से अधिक ठंडा वातावरण एवं उष्ण वातावरण चाहिए। जहाँ उष्ण वातावरण रहेगा, वहाँ जल को उष्ण रहने के लिए,

जो जीव स्व-स्वभाव (स्वतंत्रता, समता, शुद्धता) को जितने-जितने अंश में त्याग करता है वह उतने-उतने अंश में अधार्मिक, पापी, दुःखी, पराधीन होता है। इसलिये जो मोह, राग, द्वेष, लोभ, घृणा, काम, माया आदि वैभाविक भावों से आक्रांत है इसके आधीन है वह दुःखी है। अतः प्रत्येक धार्मिक व्रत, नियम पद्धति में उपर्युक्त कलुषताओं को त्याग करने की शिक्षा दी जाती है। कोई यदि धार्मिक बाह्य क्रियाओं को (पूजा, उपवास, तीर्थ-यात्रा, धार्मिक ग्रंथों को पठनादि) करता हुआ भी भावात्मक अशुद्धता को नहीं त्याग करता है वह कदापि शांति को प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि उसमें धर्म प्रगट नहीं हुआ है।

जो दूसरों की निंदा-प्रशंसा से भी प्रभावित होता है वह भी परतंत्र है क्योंकि एक तो वे भाव आत्मा के नहीं है। द्वितीयतः इसके लिए दूसरों की पराधीनता है। किसी के द्वारा निंदा करने से हम दुःखी होते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे दुःख के लिए वह निमित्त बना उससे हम प्रभावित हुए, उसके आधीन बने। इस ही प्रकार प्रशंसा से अहंकार करते हैं तो भी हम बाह्य एवं अंतरंग में पराधीन हो गये। बाह्य पराधीन इसीलिये हुए कि उस व्यक्ति के कारण अहंकार किया। अंतरंग पराधीन रूप गर्व को हमने स्वीकार किया क्योंकि गर्व के कारण हमने हमारी पवित्रता को त्यागकर अपवित्रता, अशुद्धता, परवशता को प्राप्त किया। अतएव जो अंतरंग एवं बहिरंग किसी भी कारण से अविचल, अकंप, अपरिवर्तनशील, अप्रभावी होता है वह ही स्वाधीन है/स्वतंत्र है/शुद्ध है/सुखी है/शांत है/धार्मिक है। अन्य जो परंपराएँ, पद्धतियाँ, नियम, व्रत, पूजा, जाप, ध्यान, उपवास, प्रार्थना, धर्मग्रंथों का पठनादि है वह सब धर्म सुख मोक्ष के बाह्य कारक, कारण, निमित्त, सहायक, सहकारी हैं। अतः जो केवल परंपरा आदि का पालन करते हैं परंतु अंतरंग एवं बहिरंग परतंत्रता को अशुद्धता को त्याग नहीं करते वे कदापि धार्मिक या सुखी नहीं हो सकते हैं।

कुछ कट्टर, असहिष्णु, धर्मांध व्यक्ति अपनी परंपरा व उस परंपरा को मानने वालों से कदाचित् उदार होते हुए भी दूसरों से इतनी घृणा, द्वेष, ईर्ष्या करते हैं, कि

कुकृत्यों को ही धर्म मानकर बैठा है इसलिये इन कुकृत्यों को शीघ्रता से त्याग नहीं कर सकता है। इस कारण से विश्व का इतिहास ऐसे ही व्यक्तियों के कारण रक्तरंजित हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी परंपरा या रूढ़ियों के लिए कितना भी कुछ क्यों न करे वे कभी भी धार्मिक या सुखी या स्वतंत्र या पवित्र नहीं हो सकते है। इसलिये नास्तिक पापी से भी अधिक असहकार ऐसे व्यक्ति से करना चाहिए।

उपर्युक्त सिद्धांत से सिद्ध होता है कि धर्म अपना स्वभाव होने के कारण अथवा हम स्वयं धर्म स्वरूप होने के कारण धर्म सहज (सरल) है। जिस प्रकार जल का स्वभाव शीतल होने के कारण जल का शीतल होना सरल है तथापि उष्ण वतावरण में जल का शीतल होना कष्टसाध्य है।

## उपलब्धि से भी सदुपयोग दुर्लभ

काल अनंत, जीव अनंत, कर्म अनंत तथा प्रत्येक जीव की इच्छाएँ अनंत होने के कारण जीव की सांसारिक-भौतिक इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती हैं, इच्छानुसार उपलब्धि भी नहीं होती हैं। उपलब्धि भी नाना जीवों की नाना प्रकार की होती हैं। कहा भी है-''णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणविहं हवे लद्धी'' अर्थात् विश्व में अनेक जीव हैं, अनेक कर्म है और लब्धियाँ भी विभिन्न प्रकार की होती हैं।

कथंचित् कर्मवशात् (क्षयोपशम) कुछ उपलब्धि हो जाने पर भी स्वार्थनिष्ठ, संकीर्ण-कलुषित भावना वाला जीव उपलब्धि का भी सदुपयोग नहीं कर पाता है परन्तु अधिकांशतः दुरुपयोग ही करता है। यथा-

**विद्या विवादाय धनं मदाय शक्ति परेषां परपीड़नाय।**
**खलस्य साधोर्विपरीतमेतत् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।।**

अपवित्र विचार वाला दुर्जन विद्या को प्राप्त करके वाद-विवाद कलह करता है, धन को प्राप्त करके, भोग-राग, दिखावा, अहंकार में मस्त हो जाता है, शक्ति प्राप्त करके दूसरों को सताता है। पवित्र विचार वाला सज्जन इससे विपरीत विद्या से स्वपर

में दान, वचन का फल मनुष्य को प्रीतिकर होना है। परन्तु अनादि कालीन अविद्या, मोह, रागद्वेषात्मक विकारों भावों से संस्कारित जीव यत्किचत् उपलब्धि को प्राप्त करता है उसका सदुपयोग स्वपर कल्याण के लिए प्रायः न करके स्वपर अकल्याण के लिए ही करता है। उदाहरण के लिए प्रायः प्रत्येक धर्म में तथा आधुनिक विज्ञान में भी मनुष्य जन्म को सर्वश्रेष्ठ एवं दुर्लभ माना है। प्रत्येक धर्म में मनुष्य जन्म का सदुपयोग एवं लक्ष्य स्व-पर कल्याण, मोक्ष, (निर्वाण, ईश्वर प्राप्ति) कहा है। परन्तु अधिकांश मनुष्य अधिकतर उपर्युक्त उद्देश्य के विपरीत भोग, लालसा, ईर्ष्या, कलह, युद्ध, शोषण, विकथा, आलस्य अनर्थदण्डादि कार्य में ही लगे रहते हैं। इसी कारण अनंत बार मनुष्य जन्म को प्राप्त करके भी यह जीव अपना पवित्र परम लक्ष्य को एक बार भी प्राप्त नहीं कर पाया है। जीव ने जितनी शक्ति एवं समय का दुरुपयोग कुकार्य में किया है उसका अनंतवाँ अंश भी सुकार्य, पवित्र कार्य, उपादेय कार्य, आत्मकल्याण के कार्य में प्रयोग करता तो उसे अवश्य अनंत सुख एवं ज्ञान की उपलब्धि हो जाती।

जिस प्रकार रावण ने शक्ति, सत्ता, बुद्धि, संपत्ति आदि को प्राप्त करके भी उसका सदुपयोग नहीं कर पाने के कारण केवल उसका ही विनाश नहीं हुआ अपितु एक सम्बृद्ध सभ्य, वैज्ञानिक, कला-कौशल ज्ञान से युक्त असुर जाति का बहुत कुछ विनाश हो गया।

रावण के समान दुर्योधन, कंस, जरासंध, हिटलर, नेपोलियन आदि ने अपनी उपलब्धि का दुरुपयोग किया। प्रायशः चक्रवर्ती, अर्द्ध-चक्रवर्ती, महाराजा, राजादि दूसरों के ऊपर आक्रमण करने में दूसरों के देश को जीतने में सुरा-सुंदरी, शिकार में, आडंबरों में, अनावश्यक कार्यों में करते थे। उनकी परंपरा अभी भी धनी, उद्योगपति, नेतादि में पाई जाती हैं। उपर्युक्त व्यक्तियों की जो उपलब्धि है वह पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म (प्रायः पापानुबंधी पुण्य) के उदय से होती है और वह उपलब्धि स्व-पर कष्ट के कारण बनती है। इसलिये ऐसा पुण्य एवं उपलब्धि आध्यात्मिक विकास चाहने वालों के लिए हेय है, त्यजनीय है। कहा भी है-

कि ऐसा पुण्य मेरा न होवे जिससे उपरोक्त दोष उत्पन्न होते हैं। अतः जिससे वैभव आदि प्राप्त होते हैं उसे ही यथार्थ पुण्य नहीं मानना चाहिए परन्तु यथार्थ पुण्य उसे ही मानना चाहिए जिससे हमारा भाव पवित्र, उदार, शांत सुखमय हो। अतः पुण्य की परिभाषा हैं-**''पुनाति आत्मनः पवित्री क्रियते इति पुण्यः''** अर्थात् जो आत्मा को पूत, पवित्र, शुद्ध परिमार्जित करे उसे पुण्य कहते हैं। यदि कोई धन, सत्ता, शक्ति, बुद्धि, प्रभावादि को प्राप्त करके स्वयं को उदार, सरल, नम्र, परोपकारी, दानी नहीं बना पाता है तो उसे पुण्यात्मा नहीं परन्तु पापात्मा समझना चाहिए। जिस प्रकार वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग यदि विश्व कल्याण के लिए न करके उसके विनाश के लिए करते हैं तो वे उपकरण आशीर्वाद स्वरूप न होकर अभिशाप स्वरूप हो जाते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक उपलब्धि का सदुपयोग विकास के लिए है तो उसका दुरुपयोग विनाश के लिए है। चावल, शक्कर, गुड़, अँगूर, आदि ताजा शुद्ध अवस्था में शरीर के लिए उपकारी है परन्तु वे ही जब अशुद्ध, सड़ी, गली, अवस्था को प्राप्त करके मद्य (शराब) अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं तब शरीर, मन तथा आत्मा के लिए अहितकारी हो जाते हैं। उसी ही प्रकार उपलब्धियों का जब सदुपयोग होता है तब वे स्व-पर के लिए मंगलमय बन जाती है परन्तु जब उसका दुरुपयोग (विकृत) होता है तब वे स्व-पर के लिए अमंगलमय बन जाती है। तामस प्रकृति का व्यक्ति जिस प्रकार शुद्ध अँगुरादि को विकृत करके (मद्य बनाकर) सेवन करता है उसी ही प्रकार दुष्ट, मोही, क्षुद्र व्यक्ति उपलब्धियों को अपवित्र (स्व-पर अकल्याण) रूप से सेवन करता है। इसे ही धर्म में मद (भावात्मक मद्य/नशा) कहा है। यथा-

**(1) ज्ञान का दुरुपयोग**-ज्ञान स्व-पर प्रकाशक रूपी अभौतिक आध्यात्मिक ज्योति स्वरूप, अमृत-स्वरूप, ज्ञानानंद स्वरूप, आत्मस्वरूप, समता स्वरूप होते हुए भी अधिकांश क्षुद्र प्राणी ज्ञान को प्राप्त करके अहंकारी, कुटिल, परपीड़क, परछिद्रान्वेषक, परनिन्दक, आत्म प्रशंसक, सदाचार, विनय-नम्रता, ध्वंसी बन जाते हैं। प्रायोगिक अनुसंधान से मैंने पाया है कि वर्तमान के धर्म की पढाई करने वाले अधिकांश व्यक्ति

दूसरों को कुद्ध दृष्टि से देखना तप का दुरुपयोग है। महाभारत, रामायणादि से ज्ञात होता है कि कुछ तपस्वी, सूखे पत्ते आदि खाकर रहने वाले या महीनों-महीनों उपवास करने वाले भी छोटी-छोटी बातों या छोटी-छोटी घटनाओं में क्रुद्ध होकर दूसरों को अपशब्द कहते थे या शाप देते थे या युद्ध तक करके नरसंहार करते थे।

**(3) धर्म का दुरुपयोग**–प्रायः प्रत्येक संप्रदाय (धर्म) में स्वयं को पवित्र करना एवं दूसरे जीवों से उदार व्यवहार करना, दूसरों की सेवा करना कहा गया हैं। परन्तु प्राचीन इतिहास (पुराण) आदि के अध्ययन से एक वर्तमान के प्रायोगिक परिशीलन से स्पष्ट परिज्ञान होता है कि प्रायः प्राचीनकाल से ही एक मतावलंबी अन्य मतावलंबी से घृणा करते हैं, क्षति पहुँचाते हैं नीच दृष्टि से देखते हैं। इतना ही नहीं, एक ही देव को, गुरु या धर्मग्रंथ बात मानने वालों में आगे जाकर जब मतभेद पड़ जाता है तब एक-दूसरों को अधर्मी पापी मानकर उससे कटु व्यवहार करते हैं। इतना ही नहीं, एक-दूसरों को समूल नष्ट करने की चेष्टा करते हैं ऐसे धर्मयुद्ध (अधर्मयुद्ध) से यह धरती अनेक बार रक्त-रंजित हुई हैं और हो रही है।

**(4) धन का दुरुपयोग**–धन का सदुपयोग दान देने में, परोपकार करने में हैं। परन्तु लोभी, दुष्ट व्यक्ति प्रथमतः अन्याय से दूसरों का शोषण करके तो धन कमाता है। धन प्राप्त करके पुनः अहंकार, आडंबर, भोग, संग्रह, शोषण करने लग जाता है। निर्धन धनी से कुछ सहायता चाहता है तथा धनी का भी कर्त्तव्य निर्धनों की सहायता करना है परन्तु होता प्रायः इससे विपरीत। कुछ गरीब धनी की सेवा करते हैं, उसका आदर करते हैं, समय तथा तन से सहायता भी करते हुए दिखाई देते हैं परन्तु अधिकांशतः धनी गरीबों के शोषण, अनादर, हत्या, अत्याचार, बलात्कार करने में लगे रहते हैं।

**(5) आयु का दुरुपयोग**–बाल्यावस्था में शरीर तथा शरीर के अवयव (द्रव्य इन्द्रियाँ तथा बाह्य उपकरण एवं अंतरंग उपकरण) परिपक्वता नहीं होने के कारण शारीरिक क्रिया एवं मानसिक क्रिया ये कुछ मंद होती है। आयु वृद्धि के साथ-

उपलब्धि की वृद्धि से वह वक्रादि परिणाम वाला हो जाता है यह सर्वजन सुप्रसिद्ध उदाहरण ''उपलब्धि से भी सदुपयोग दुर्लभ'' को सिद्ध करने के लिए बहुत बड़ा साक्ष्य/प्रमाण है। मेरा प्रायोगिक अनुभव है कि बाल्यावस्था में मनुष्य धार्मिक संस्कार, धार्मिक कार्यक्रम, धार्मिक-शिक्षा, गुरु सेवा (आहार दान, वैयावृत्ति) में जितनी रूचि लेता है, आयु की वृद्धि के साथ उपर्युक्त गुणों में ह्रास होता जाता है, आगे जाकर जिस काम में रूचि होती थी उससे उसकी अरूचि, घृणा हो जाती है या शर्म आती है या अहंकार के कारण उसे नहीं करता है। यौवनावस्था मनुष्य की शक्तिपूर्णावस्था होती है परन्तु इस अवस्था में मनुष्य अपनी शक्ति का दुरुपयोग भोग-विलास में, मनोरंजन में, धन कमाने में, अहं की पुष्टि में करता है वृद्धावस्था में जीवन के उतार-चढ़ाव, हानि-लाभ, सुख-दुःख, संयोग-वियोग जनित अनुभव होता है जिससे मनुष्य सहनशील, गंभीर, स्थितप्रज्ञ, दूरदृष्टि सम्पन्न आत्म कल्याण के लिए अधिक तत्पर सतर्क होता है परन्तु प्रत्यक्ष अनुभव से ज्ञात होता है कि अधिकांश वृद्ध व्यक्ति चिड़चिड़े स्वभाव वाले, असहिष्णु, लड़ने-भिड़ने वाले, बातुनी, अहंकारी होते हैं।

**(6) धर्म क्षेत्र एवं धर्मोत्सव का दुरुपयोग**–धर्मक्षेत्र एवं धर्मोत्सव का सदुपयोग जन-जागरण करना है उसको धर्म में तथा नैतिक उत्थान में जोड़ना है। परन्तु वहाँ के पुजारी, पण्डे, अध्यक्ष, कार्यकर्त्तादि भक्तों का यात्रियों का शोषण करते हैं, धर्म के नाम पर दिखावा, आडंबर, मिथ्या, परंपरा, झगड़ा, फूट, कलह करते हैं। यात्री भी चोरी करते हैं, गंदगी फैलाते हैं, स्त्रियों से छेड़खानी करते हैं, चोरी करते हैं, अपवित्रता फैलाते हैं।

**(7) सत्ता-शक्ति का दुरुपयोग**–सत्ता-शक्ति का सदुपयोग दूसरों के उपकार सेवा रक्षा विकास करना है। परन्तु प्रायः इसके द्वारा व्यक्ति दूसरों को कष्ट देता है, शोषण करता है, क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि करता है। इसके लिए ज्वलंत उदाहरण पहले के तानाशाही राजा और वर्तमान के दुष्ट नेतादि है।

**(8) महान् व्यक्तियों का दुरुपयोग**–महान् व्यक्ति अपनी साधना एवं

सदुपयोग करेगा तब सुख प्राप्त करने में देरी नहीं लगेगी। अतः जिसकी जो उपलब्धि है उसका सदुपयोग करना ही सुख प्राप्त करने का शुभारंभ है।

**'शुभस्य शीघ्रम्'**

## व्यवहार-आगम-आध्यात्म में शब्दों के अर्थ

सुनो! सुनो! हे ज्ञान/(सत्य-जिज्ञासु) पिपासु, नाना शब्दों के नाना अर्थ।
लौकिक-व्यवहार से लेकर, आगम से आध्यात्मिक तक।। (1)

लौकिक व्यवहार से 'मैं' को, माना जाता है भौतिक तन।
'मेरा' का मतलब होता है, धन जन मान नाम व मन।। (2)

आध्यात्मिक दृष्टि से 'मैं' का, अर्थ होता है शुद्ध आत्मा।
तन मन धन जनादि रहित, सच्चिदानंदमय परमात्मा।। (3)

'मेरा' का मतलब है आध्यात्मिक, दृष्टि से आत्मा के गुण।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यादि, जो आत्मा के विशुद्ध गुण।। (4)

'योनि' शब्द तो व्यवहार में, महिलाओं के प्रजनन अंग।
'चौरासी लाख योनि' की संख्या, जो महिलाओं के ही न होते अंग।। (5)

'लिंग' शब्द तो व्यवहार से, पुरुषों के होते प्रजनन अंग।
व्याकरण व आगम से स्त्री-पुरुष व होते नपुंसक लिंग।। (6)

आध्यात्मिक में योनि व लिंग, नहीं होते हैं शुद्ध जीवों में।
'योनि', 'वेद' व 'लिंग'रहित, होते हैं हर जीव सच्चिदानंद।। (7)

व्यवहार से 'निकम्मा' शब्द, प्रयोग होता आलसी जीवों में।
आगम में तो 'निकम्मा' शब्द, प्रयोग होता सिद्ध जीवों में।। (8)

'द्रव्यसंग्रह' शब्द व्यवहार में, धन संग्रह में प्रयोग होता।

शत्रु-मित्र व छोटा-बड़ा आदि, होते शब्द व्यवहार में।
आध्यात्मिक तो इससे परे, समस्त संबंध शुद्ध आत्मा में।। (13)

ऐसा ही सर्वत्र जानने योग्य, भिन्न-भिन्न अर्थ हर शब्द के।
'कनकनन्दी' का लक्ष्य सदा है, परे होने का हर शब्द से।। (14)

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 08.11.2014, रात्रि 3.22

(अधिकांश जनों की शब्द व भाषा ज्ञान की कमी एवं समस्या के समाधानार्थे यह कविता बनी।)

## शुद्ध-बुद्ध-परमानंद ही जीवों का धर्म

**(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)**

वस्तु स्वरूप है वैश्विक धर्म...जीव-अजीव सभी के धर्म।
अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि...अनंत गुण होते द्रव्य के कर्म।। (1)

जीव के चेतन है विशेष धर्म...ज्ञान-दर्शन-सुख वीर्यादि गुण।
सच्चिदानंदमय जीव का धर्म...अहिंसा क्षमादि रत्नत्रय धर्म।। (2)

शुद्ध चेतन है जीवों का धर्म...अशुद्ध चेतन जीवों का अधर्म।
अशुद्ध चेतन से (लेते) दुःखादि जन्म...अतएव दुःखादि जीव के अधर्म।। (3)

अशुद्ध चेतन के कारण होते...राग द्वेष मोह विकार होते।
रागद्वेषादि अतः होते कुधर्म...समस्त पाप होते है अधर्म।। (4)

इन्हें नाश हेतु होते (जो) सुभाव...शुभ-भाव या शुद्ध स्वभाव।
वे भी सब होते हैं सुधर्म...(आत्मा) स्वभाव प्राप्ति के भाव-कर्म।। (5)

दान, दया, पूजा, परोपकार...पंचपाप सप्त-व्यसन-परिहार।
अन्याय, अत्याचार, शोषण त्याग...भ्रष्टाचार व फैशन त्याग।। (6)

यह है जीवों का परम धर्म...'कनकनन्दी' का आत्मिक धर्म।। (10)

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 04.11.2014, प्रातः 6.00 बजे

## तन-मन-अक्ष परे-मेरा स्व-शुद्ध स्वरूप

### (कर्मजनित सुख एवं ज्ञान भी भौतिकमय)

**(राग : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)**

सच्चिदानंद है मम स्वरूप, अनंत गुणमय अमूर्त रूप।
तन-मन-अक्षादि नहीं मम (स्व) रूप, ये सब अशुद्ध कर्मज रूप।। (1)

अनादि कर्मबंध से बना हूँ मूर्तिक, राग द्वेष मोह युक्त अशुद्ध रूप।
तथापि मेरा नहीं है शुद्ध स्वरूप, शुद्ध-बुद्ध चिन्मय आनंद रूप।। (2)

राग द्वेष मोह है विकार रूप, पुद्गल कर्म है मूर्तिक रूप।
इनसे उत्पन्न है तन्मय अक्ष, अतएव तनादि न मम स्वरूप।। (3)

नोकर्म वर्गणा से बना है तन, मनोवर्गणा से बना है मन।
क्षयोपशम से बनी इन्द्रियाँ, अतएव तीनों हैं भौतिकमय।। (4)

अतएव तनादि के गुण व कर्म, नहीं होते हैं मन शुद्ध स्वरूप।
ये सब अशुद्ध व मूर्तिक रूप, व्यवहार से भले मेरा ये रूप।। (5)

कर्म आबद्ध अभी मेरा स्वरूप, अतएव मेरे गुण हुए अशुद्ध।
तथापि शुद्ध से (ये) नहीं मेरा रूप, यथा बादलादि नहीं आकाश रूप।। (6)

तन मन अक्षादि के गुण व कर्म, भूख प्यास सुख दुःख व उम्र।
राग द्वेष मोह अज्ञान भ्रम, ये सब न होते मम गुण व कर्म।। (7)

अपना पराया व ऊँच व नीच, तर्क वितर्क व कुतर्क प्रपंच।
जन्म जरा मरण रोग व शोक, इनसे परे हूँ मैं आत्म स्वरूप।। (8)

## (आध्यात्मिक विचार : परम सकारात्मक विचार)

## (परम सकारात्मक विचार : आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र)

**(चाल : सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)**

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ही (है), परम सकारात्मक विचार।
इसी से ही होता संपूर्ण विकास, लौकिक से आत्मिक विकास।।

सत्य-तथ्य सह आत्मा विश्वास ही (से), होता है सही सम्यक् दर्शन।
वस्तुस्वरूप के परिज्ञान से ही, होता है सही सम्यक् ज्ञान।।

इनसे युक्त सही आचरण/(पुरुषार्थ) से ही, होता सही सम्यक् चारित्र।
इसी से होता है सर्वांगीण विकास, लौकिक से आत्मिक विकास।।

जब होता है सम्यक् दर्शन, जीव स्वयं को माने सिद्ध समान।
स्वयं को न मानता बाल वृद्ध युवा, धनी-गरीब या दीन-हीन।।

नारकी पशु या देव न मानता, शुद्ध रूप से माने सिद्ध समान।
सप्तभय अष्ट मद विवार्जित, ईर्ष्या द्वेष घृणा तृष्णा से रहित।।

संपूर्ण संकीर्णता क्रूरता रहित, उदार सहिष्णु धैर्य से सहित।
निंदा चुगली अपमान रहित, भेद-भाव (व) द्वंद्व से रहित।।

कलह विसंवाद संक्लेश रहित, स्व-पर-विश्व-हित से सहित।
शुद्ध नय से सिद्ध सम मानता, अशुद्ध नय से कर्म-बंधन।।

अनादि कर्म बंधन बद्ध से, बना हुआ अभी अशुद्ध जीव।
सप्त तत्त्व नव पदार्थ सहित, द्रव्य-भाव-नोकर्मों से युक्त।।

तथापि आत्मिक विकास द्वारा, बनना चाहता है शुद्ध स्वरूप।
श्रावक-मुनिधर्म अतः पालता, स्वयं को न मानता अजीव रूप।।

इसी हेतु ही राजा महाराजा चक्री भी, बनते हैं आध्यात्मिक संत।

# दोनों कानों एवं मन से मुझे प्राप्त शिक्षाएँ

**(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)**

दोनों कान मुझे शिक्षा देते हैं, हित सुनने की शिक्षा देते हैं।
अहित मिथ्याव निंदा चुगली, नहीं सुनने की शिक्षा देते हैं।। (1)

श्रवण ही अंतिम इन्द्रिय होती, हित श्रवण से अधिक शिक्षा मिलती।
गुरु-शिष्य परंपरा अतः चलती, देशनालब्धि भी यह ही होती।। (2)

कान के बाद होता है मन, हिताहित चिंतनकर है मन।
सम्यक्त्व प्राप्ति में हेतु है मन, कर्मबंध व नाश में हेतु प्रधान।। (3)

सम्यक्त्व प्राप्ति हेतु पाँचों ही लब्धि, गुरु उपदेश होती देशनालब्धि।
बिना देशना से न होता सम्यक्त्व, जिससे ज्ञान-चारित्र होते यथार्थ।। (4)

तीर्थंकर गणधर आचार्य आदि, देशना से प्राप्त करते सम्यक्त्व आदि।
इसे कहते हैं प्रथमोपशम सम्यक्त्व, पीछे बनते क्षायोपशमक्षायिक।। (5)

सम्यग्दर्शन होने के अनंतर, सम्यग्ज्ञान भी पाते देशना सुनकर।
तीर्थंकर आचार्य आदि के उपदेश, सुनकर बनते हैं ज्ञानी विशेष।। (6)

सुनकर मनन करते हैं मन से, हिताहित चिंतन करते भाव से।
जिससे सम्यक्त्व व होता है ज्ञान, अतएव महत्त्वपूर्ण होते कान व मन।। (7)

मनातीत जब होता है ज्ञान, तब हो जाता है केवलज्ञान।
दुरुपयोग जब होता कान व मन का, कारण बनते हैं पाप बंधनों का।। (8)

हर जीव तो जीवन निर्वाह करते यद्वा-तद्वा।
वृक्ष से लेकर कीट-पतंग व मनुष्य यद्वा-तद्वा।।

आहार भय मैथुन परिग्रह से होकर आवेशित।
क्षुद्र जीव भी जीवन जीते लेश्या से हो प्रेरित।।

जीवन में न महान् लक्ष्य, नहीं है सत्य व शांति।
हिताहित विवेक रहित जीते, जीवन में नहीं है तृप्ति।।

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि भी पाते, पाते है उच्च डिग्री।
दया सेवा परोपकार बिना, जीवन में नहीं प्रगति/तृप्ति।।

स्व-परहित हेतु जो जीते, महान् लक्ष्य सहित।
उनका जीवन निर्माण होता, होते शांति/(तृप्ति) से युक्त।।

अन्याय-अत्याचार न करते, होते सरल-सहज।
कलह-विसंवाद, संक्लेश रहित, करते जीवन निर्माण/यापन।।

इससे आगे जो आत्मकल्याण हेतु करते सर्व-संन्यास।
ध्यान-अध्ययन व समता द्वारा, करते आत्म-विकास।।

आत्मसाधना व आत्मशुद्धि से पाते परि-निर्वाण।
'सच्चिदानंद' बनकर पाते हैं अमृत-स्थान।।

इसी हेतु ही राजा-महाराजा भी, बनते श्रमण-साधु।
परि-निर्माण की प्राप्ति हेतु ही 'कनक' बना है साधु।।

## सम्यग्दृष्टि का स्वरूप

**(चाल : आत्मशक्ति के.....)**

सम्यग्दृष्टि के स्वरूप को जानो, अंतरंग व बाह्य पहचानो।

प्रशम-संवेग-अनुकंपा-आस्तिक्य, ज्ञान-वैराग्य से भी सहित चित्त।
देव-शास्त्र-गुरु-श्रद्धा से युक्त, 'वंदेतद्गुणलब्धये' भाव सहित।।

मैत्री प्रमोद कारुण्य साम्य युक्त, स्व-पर-विश्वकल्याण भाव सहित।
परनिंदा-अपमान-भाव रहित, गुण-गुणी-आदर-भाव सहित।।

निःशंकित निकांक्षित निर्विचिकित्सा युक्त, अमूढ़दृष्टि उपगूहन स्थितिकरण युक्त।
धर्मप्रभावना करते ख्याति पूजा रहित, धन-जन संग्रह की कांक्षा रहित।।

भेद-भाव व पक्षपात रहित भाव, सनम्र-सत्यग्राही-निष्पक्ष युक्त।
शुद्धभाव हेतु शुभ भाव सहित, शक्ति अनुसार तप-त्याग सहित।।

भोग को माने रोग समान, सत्ता-संपत्ति को न माने स्वगुण।
द्रव्य रूप से माने (स्व-को) सिद्ध समान, 'कनकनंदी' का लक्ष्य परिनिर्वाण।।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 15.10.2014, अपराह्न 5.12

## आध्यात्मिक संतों के जीवन प्रबंधन

**(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की.....)**

धन्य गुरुवर/(मुनिवर) धन्य हो तुम...कितनी साधना करते हो...
सत्य समता शांति के द्वारा...आत्मा की साधना/(विशुद्धि) करते हो...(ध्रुवपद)...

असि मसि कृषि वाणिज्य सेवा...शिल्प व गृहस्थों के काम...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागकर...करते हो आध्यात्मिक काम...(1)

राग द्वेष मोह काम तृष्णा छोड़...करते हो आत्मा का शोध व बोध...
मैत्री प्रमोद माध्यस्थ कारुण्य से...देते हो स्व-पर को प्रबोध...(2)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री व...लौकिक कार्य धन जन संग्रह...
भौतिक निर्माण आडंबर त्यागकर...करते हो सदा ध्यान-अध्ययन...(3)

इसी हेतु ही 'कनकनंदी' भी...साधना करता है अविरल...(7)

## धर्म केवल जीवन जीने की कला नहीं है, परन्तु जीवन-निर्माण व परिनिर्वाण के उपाय भी

**(चाल : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया.....)**

जीने की कला होता है धर्म...तथाहि निर्माण व परिनिर्माण की।
तन-मन-आत्मा स्वस्थ हेतु भी...अभ्युदय निश्रेयस सुख हेतु भी।।

अन्याय-अत्याचार-पापाचार त्याग से...मिलता सामाजिक सम्मान भी।
सप्त-व्यसन व सर्व फैशन त्याग से...तन-मन-धन के होता रक्षक भी।।

यह ही संक्षिप्ततः जीने की कला...इसके बिना न मिलता सुख।
इसके बिना सत्ता-संपत्ति-डिग्री से...नहीं आती है जीने की कला।।

कषाय-त्याग व संयम धारण से...दया-दान-सेवा करने से।
सद्गृहस्थ/(श्रावक) धर्म का पालन होने से...अभ्युदय सुख के कारक भी।।

इससे बनता है जीवन का निर्माण...पद प्रतिष्ठादि/(प्रसिद्धि) से नहीं होता।
गृह-प्रतिष्ठान-यंत्रादि निर्माण से...जीवन का निर्माण नहीं होता।।

श्रमण बनकर समता-धरकर...आत्महित हेतु श्रम करने से।
आत्मविशुद्धि से कर्म नष्टकर...शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनता है।।

यह ही जीव की है परम-अवस्था परम-निर्वाण...जो है शाश्वतिक आनंदमय।
इसी हेतु ही राजा-महाराजा-चक्री...त्याग करते सर्व वैभव।।

धर्म सुखकर-समस्त अतएव...समस्त दुःखों के नाशक भी।
धर्म तो आत्म का शुद्ध स्वरूप...'कनक' का निज स्वरूप भी।।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 05.10.2014, रात्रि 1.11 से 1.36

मोह-क्षोभ से रहित...भाव वीतराग युक्त...(1)

ज्ञाता-दृष्टा भाव युक्त...राग-द्वेष रहित...

सरल सुशांत चित्त...क्षमा-मार्दव युक्त...(2)

शौच संयम सहित...तप-त्याग से सहित...

आकिंचन्य ब्रह्म युक्त...शुद्धात्मा भाव से युक्त...(3)

शत्रु-मित्र विरहित...संकल्प-विकल्प रहित...

नहीं आकर्षण चित्त...विकर्षण से भी रिक्त...(4)

इन्द्रिय ज्ञान रहित...मन से भी परे चित्त...

तन-मन व अक्ष परे...शुद्ध चिन्मय सहित...(5)

सच्चिदानंद स्वरूप...शुद्ध-बुद्ध सुख रूप...

अनुभव तेरा रूप...अनिर्वचनीय स्वरूप...(6)

मोही-रागी से अज्ञात...तर्कातीत व अभौतिक...

भौतिक ज्ञानी से अज्ञात...धर्मांध से भी अज्ञात...(7)

रूढ़ि परंपरा परे...न्याय-राजनीति परे...

सीमा (व) बंधन परे...अनंत चिन्मय पूरे...(8)

भगवत् स्वरूप तू ही...परमात्म स्वरूप तू ही...

हर जीव का तू शुद्ध रूप...परिनिर्वाण स्वरूप...(9)

तू ही हो परम पवित्र...श्रेष्ठ-ज्येष्ठ व वरिष्ठ...

पूज्य-ध्येय व प्राप्य...'कनकनन्दी' का सर्वस्व...(16)

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 21.10.2014, रात्रि 12.40 से 1.47 तक

**(आत्म चिंतन व आत्म नियंत्रण)**

## पापी-दुष्ट-अधर्मी के कारण भी न बनूँ अधर्मी

कोई विष पीने पर मैं न पीता हूँ विष, तथाहि न करूँगा अन्य हेतु राग-द्वेष।
अन्य के कारण यदि करूँ मैं राग-द्वेष, अन्य का मैं बन गया दास विशेष।।

अन्य से यदि मैं संचालित होता रहूँगा, अन्य के कारण मैं पापी होता रहूँगा।
जिससे संसार भ्रमण मेरा होता रहेगा, दूसरों के कारण मैं दुःखी होता रहूँगा।।

अतः अन्य से मैं न करूँ राग-द्वेष, सत्य-समता-शांति से रहूँ विशेष।
आत्म-हित सहित परहित भी करूँ, 'कनक' आत्मविशुद्धि सतत करूँ।।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 30.10.2014, रात्रि 10.30

## आत्मिक-सुख-स्वरूप व सुख प्राप्ति के उपाय : धर्म

**(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन....., सायोनारा.....)**

आत्मिक सुख की प्राप्ति हेतु, चक्री भी त्यागते राज-वैभव।
धर्म तो सुख-मय सुख-उपाय, आत्मिक-सुख बिन न होता धर्म।।

अहिंसा-सत्य-अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह दान तप (व) त्याग।
क्षमा-मार्दव-आजर्व व, (शौच) संयम, सुख-प्राप्ति हेतु अतः ये धर्म।।

पूजा प्रार्थना व आराधना ध्यान, सुख-प्राप्ति हेतु होते ये धर्म।
यदि ये न होते सुख प्राप्ति हेतु, ये सब न होते कदापि धर्म।। (1)

नवकोटि से पालते हैं धर्म, मन-वचन-काय-कृत-कारित से।
अनुमत से व परस्पर गुणा से, आत्मविश्वास युक्त ज्ञान चारित्र से।।

सनम्र सत्यग्राही हो पवित्र भाव से, समता शांति सह धैर्य भाव से।
राग-द्वेष-मोह व ईर्ष्या-तृष्णा से, धर्म आराधना होती नवकोटि से।। (2)

विषय-वासना व द्वंद्व त्याग से, संकल्प-विकल्प संक्लेश त्याग से।
आरंभ-परिग्रह-आसक्ति त्याग से, निर्मल (व) निर्विकार होने से।।

# भगवान् को पूर्णतः जानते हैं भगवान्
# छद्मस्थ पूर्णतः नहीं

## (भव्यजीव श्रद्धा-प्रज्ञा-साधना से बनते हैं भगवान्)

**(चाल : सुनो-सुनो हे दुनिया....., सायोनारा....., भातकुली....., छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)**

भगवान् को जानने हेतु, स्वयं को बनना होगा भगवान्।
अन्यथा न होगा पूर्ण परिज्ञान, श्रद्धा-प्रज्ञा से आंशिक ज्ञान।। (स्थायी)

इसके कारण अनेक होते हैं भगवान् में होते अनंत-गुण।
अनंत गुणों को जानने हेतु, चाहिए अनंत ज्ञान-गुण।।

भगवान् के बिना अन्य को होता है, संख्यात व असंख्यात ज्ञान।
मति-श्रुतज्ञानी जानते संख्यात, अवधि-मनःपर्यय असंख्यज्ञान।। (1)

सिद्ध भगवान् तो होते अमूर्तिक, जो होते केवल ज्ञानगम्य।
छद्मस्थ जीव न जान पाते, अमूर्तिक श्रुतज्ञान से परोक्षगम्य।।

विशाल वट वृक्ष स्व-बीज से बनता, बीज से विशाल होता है वृक्ष।
शक्ति रूप में बीज में निहित, वृक्षाकार न होता है बीज।। (2)

तथाहि जीव/(भव्य) में भगवान् निहित, भव्य/(जीव) ही बने है भगवान्।
तथापि छद्मस्थ न जान पाते (पूर्णतः), अनंत गुण युक्त स्व-भगवान्।।

बीज में निहित विशाल वृक्ष, न विकसित होने पर दिखे वृक्ष।
तथाहि जीव में प्रभु न देखे/(जाने), विकसित होने पर जाने भगवान्।। (3)

यथा कृषक श्रद्धा करता है, बीज से ही वृक्ष बनेगा महान्।
यथा जो श्रद्धा करते भव्य, वे बन सकते हैं भगवान।।

सत्य-शिवमय आनंद अवस्था, अमूर्तिक चिन्मयानंद अवस्था।।

इससे विपरीत है संसारावस्था, जो राग-द्वेष-मोह से युक्त।
तन-मन-अक्ष-मृत्यु-युक्त, संसारिक सुख-दुःख क्लेश युक्त।।

अनादिकाल से हर जीव, संसारावस्था से होता है युक्त।
द्रव्यभाव नोकर्म श्रृंखला युक्त, पंचपरिवर्तन से होता सहित।।

अक्षय अनंत है संसारी जीव, चौरासी लाख योनियों से सहित।
चतुर्गति भ्रमण से होते सहित, अज्ञान-मोह व संक्लेश युक्त।।

पंचलब्धियों को प्राप्त करके, जो जीव बनते हैं सम्यग्दृष्टि।
सत्य-तथ्य सह आत्म श्रद्धान से, जो भव्य बनता है सम्यग्दृष्टि।।

जिससे वे सम्यग्ज्ञानी बनते, जानते वे आत्मा-परमात्मा स्वरूप।
षट् द्रव्य सप्ततत्त्व सहित, जानते वे ब्रह्माण्ड के भी स्वरूप।।

जिससे वे परमात्म/(भगवान्) बनने हेतु, करते सांसारिक मोह त्याग।
भोग-उपभोग सत्ता-संपत्ति सहित, करते ख्याति पूजा लाभ त्याग।।

ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग द्वारा, करते वे आत्मा के परिशोधन।
क्षपक श्रेणी द्वारा आध्यात्मिक सोपान, चढ़कर करते समस्त कर्म दहन।।

जिससे आत्मिक अनंत गुणों को, प्राप्त करके वे बनते हैं भगवान्।
ऐसे अभी तक अनंत भव्य जीव, बन गये हैं परम सिद्ध भगवान्।।

आगे भी अनंत भव्य जीव भी, बनते रहेंगे सच्चिदानंद भगवान्।
यह सब वर्णन इसी कृति में, 'कनक' किया है बनने सिद्ध भगवान्।।

डरना माँगना या प्रसन्न करना, नहीं विधेय है कभी (भी) भगवान् से।
उनके आदर्श पर चलकर, भगवान् बनना है सही विधि से।।

इसी हेतु ही समस्त धर्म-कर्म, पूजा-पाठ वंदना आरती आराधना।

हिताहित विवेक जब तक नहीं जगता, आत्मविकास तब तक नहीं होता।। (ध्रुव)

धैर्य साहस पुरुषार्थ व एकाग्रता, जब तक नहीं जागती है स्व दक्षता।
भाग्य पुरुषार्थ की नहीं होती एकता, तब तक नहीं मिलती है सफलता।।

केवल जानकारी की प्राप्ति मात्र से, रटन्त पढ़ाई की डिग्री मात्र से।
आलस्य प्रमाद युक्त छल मात्र से, विकास न होता है केवल धन मात्र से।।

नकल देखादेखी व प्रतिस्पर्धा से, मिलावट भ्रष्टाचार व चोरी मात्र से।
कट्टर स्वार्थपूर्ण रूढ़िवादी धर्म से, विकास न होता है कभी अंधश्रद्धा से।।

परम पुरुषार्थ होता आत्मविकास, जिससे परे कोई न होता विकास।
जिसे कहते हैं परिनिर्वाण सुख, जिस हेतु त्यागे चक्री संसार सुख।।

केवल भौतिक विकास से होता विनाश, यथा रावण जरासंध व कंस।
अज्ञानी मोही रागी व कामी न जानते, सत्ता-संपत्ति भोगों को ही चाहते।।

मद्यपी यथा हिताहित नहीं जानते, उससे अधिक मोही अज्ञानी होते।
अज्ञान-मोह को त्याग करो हे! भव्य, 'कनकनंदी' चाहे पूर्ण आत्म-वैभव।।

आध्यात्मिक ज्ञान को भारतीय भूल रहे, कुछ तो भूल गये कुछ विपरीत मान रहे।
फैशन-व्यसन अयोग्य काम कर रहे, इसलिये भारत का पतन हो रहा है।।

आकाश में समाहित यथा समस्त विश्व, आध्यात्मिक में समाहित ज्ञान-विज्ञान सर्व।
अनंत में समाहित समस्त संख्य-असंख्य, आत्मविकास परे न कोई विकास।।

अज्ञानी मोही रागी/(कामी) की परिणति देख, काव्य की रचना हुई दया से द्रवित होकर।
अज्ञान-मोह से पीड़ित यह संसार, आत्मविशुद्धि से नाश होगा संसार।।

## ''वैश्विक राज्य व विश्व नागरिकता''

### (मेरी दृष्टि में वैश्वीकरण व विश्व नागरिकता)

स्व-पर-विश्व के सर्वोदय हेतु, उदार पावन भाव धरेगा।
आदर्श जीवन जीने के हेतु, हर जीव को जीने भी देगा।
चारों आश्रम पुरुषार्थ युत, समग्रता से आगे बढ़ेगा।। (3) छोड़ के...।।

अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार छोड़, समता शांति से सुखी बनेगा।
कृत्रिम सीमा व भेद भाव छोड़, सरल-सहज भाव करेगा।
सूर्य किरण व वायु के समान, हर वस्तु सहभोग करेगा।। (4) छोड़ के...।।

प्रकृति शोषण संग्रह वृत्ति छोड़, समवंटन से उपयोग करेगा।
ईर्ष्या घृणा तृष्णा संकीर्णता त्याग, वैश्विक नागरिक भाव धरेगा।
तन मन धन नाम (सत्ता) से परे, स्वयं को चैतन्यमय मानेगा।। (5) छोड़ के...।।

इस दृष्टि से हर जीव को, चैतन्य सम मानेगा।
अंह दीन हीन रहित, समता सह बढ़ेगा।
परोपजीवी व परावलंबन छोड़, स्वाधीन संप्रभु भाव धरेगा।। (6) छोड़ के...।।

परम आत्म विकास हेतु, सर्वोदय करेगा।
उत्थान पतन परे, शाश्वत सुख पायेगा।
इसी हेतु 'कनक', सदा प्रयासरत।। (7) छोड़ के...।।

## आध्यात्मिक जनों की अलौकिक वृत्ति

### (लौकिक जन आध्यात्मिक जनों को गलत क्यों मानते हैं?)

**(चाल : वैष्णव जन तो तेने कहिये.....)**

आध्यात्मिक/(धार्मिक) जन (तो) तेने कहिये, जो आत्म श्रद्धान करे रे/(हैं)।
स्वयं को अमूर्तिक चिन्मयमाने, राग-द्वोष-मोह परे रे...।। (स्थायी)

तन-मन-इंद्रिय सहित होने पर भी, इसे न माने स्वरूप है।

स्व-स्वभाव का ही अध्ययन-ध्यान, चिंतन-चर्चा करते है।
स्वानुभव/(आत्म-कल्याण) को ही प्रमुख करके, आत्मानुभव भी (आंशिक) करते है।।

अशुभ त्याग कर शुभ को करते, शुद्ध को करके लक्ष्य है।
आत्मविशुद्धि हेतु धर्म पालते, नहीं चाहते ख्याति/(पूजा) लाभ है।।

दीन-हीन-अहंकार न करते, स्वाभिमान सोऽहं भाव धरे।
शत्रु-मित्र-धनी-गरीब न माने दूर रहे क्षुद्र भाव से।।

लौकिक जन से पर वे सोचते, तथाहि करे भाव-व्यवहार है।
जिससे लौकिक जन उन्हें गलत मानते दीन-हीन-अहंभावी है।।

तथापि आध्यात्मिक जन न होते, विचलित न होते ईर्ष्या-घृणा से।
अज्ञानी-मोही जन उन्हें जानकर, धरते समता भाव है।।

उनका भी आत्म कल्याण हो, करते ऐसा शुभ-भाव है।
भद्र जन यदि कोई होते, देते भी हित-उपदेश है।।

अन्यथा आत्म-साधना करते, भावना-अनुप्रेक्षा सहित है।
कर्मक्षय हेतु प्रयत्न करते, 'कनक' का भी ऐसा भाव है।।

## सम्प्रदाय पंगु; विज्ञान अंधा

बहुशः वस्तु की उपकारिता एवं अपकारिता क्रमशः उसके सदुपयोग एवं दुरुपयोग के ऊपर निर्भर करती है। परोपकारी डॉक्टर छुरी से रोगी की शल्य चिकित्सा करके छुरी का सदुपयोग करता है परन्तु डाकू छुरी से दूसरों को क्षति पहुँचाकर छुरी का दुरुपयोग करता है। योग्य वैद्य योग्य प्रणाली से विष को तत्योग्य रोगी को सेवन कराकर रोग दूर करके विष का सदुपयोग करता है, तो पापी दूसरों को मारने के लिए

अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य, कालद्रव्य से किसी का भी अपकार नहीं होता है। उपर्युक्त धर्म सार्वभौम, सर्वकालीन सर्व जीव हिताय, सर्व जीव सुखाय है परंतु उसको प्राप्त करने के जो विभिन्न साधन/मार्ग/उपाय है उसे धार्मिक सम्प्रदाय कहते हैं। प्रायः धार्मिक सम्प्रदायों का लक्ष्य उपर्युक्त होने पर भी साधन/मार्ग/उपाय अयोग्य होने के कारण उपर्युक्त लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इतना ही नहीं अनेक सम्प्रदाय के अनेक व्यक्ति अपूर्ण लक्ष्य को ही पूर्ण लक्ष्य मान लेते हैं तो अनेक लक्ष्य च्युत हो जाते हैं और अनेक लक्ष्य के विपरीत चलते हैं। इसलिये धार्मिक सम्प्रदाय ही धर्म के लिए दाह प्रदान करने वाले हो जाते हैं। जिस प्रकार नदी जब अपनी सीमा में स्वच्छ, शीतल, स्वास्थ्यप्रद जल लेकर प्रवाहित होती है तो वह नदी उस समय परोपकारी होती है परंतु जब वह नदी सीमा को लाँघकर भयंकर प्रबल बाढ़ रूप में बहती है तो विध्वंसकारी बन जाती है अथवा जल सड़ जाता है, दूषित हो जाता है, रोगाणु से युक्त हो जाता है तो वही नदी उपकारी के बदले अपकारी बन जाती है। अग्नि यदि योग्य स्थान में योग्य मात्रा में है तो उपकारी है परंतु अयोग्य स्थान में या अयोग्य मात्रा में है तो अपकारी है। उस ही प्रकार जब कोई धार्मिक सम्प्रदाय सत्य की सीमा में होता है एवं पवित्र होता है तो वह उपकारी होता है अन्यथा जब सत्य की सीमा को लाँघ जाता है अपवित्र हो जाता है तब अपकारी बन जाता है। इसी प्रकार आधुनिक विज्ञान के बारे में भी जान लेना चाहिए।

वस्तुतः द्रव्य का शुद्ध स्वरूप धर्म होने से या 'यो धरत्युत्तमेसुखे स धर्मः' अर्थात् जो उत्तम सुख में धारण करे वह धर्म होने से या सर्व जीव सुखाय सर्व जीव हिताय होने से धर्म सर्वथा उपादेय, ग्रहणीय, पालनीय हितावह है। इस लेख में या अन्यत्र भी जो मैंने धर्म के दोष बताये हैं वे दोष उपर्युक्त धर्म के नहीं है परंतु दूषित धर्म सम्प्रदाय के हैं। पहले ही लिखा था कि अधिकांश संप्रदायों के लक्ष्य उत्तम होते हुए भी उसको प्राप्त करने के मार्ग/साधन/उपाय उत्तम नहीं होने के कारण संप्रदाय उपकारी के परिवर्तन में अपकारी हो जाते हैं। जैसे कुछ व्यक्तियों को दूर के एक

है और सुवर्ण से जो बर्तन बनता है वह सुवर्णमय होता है। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध साध्य के लिए शुद्ध साधन चाहिए। इसलिए शुद्ध पवित्र लक्ष्य (धर्म) के लिए भी शुद्ध, पवित्र, विश्वास-ज्ञान-चारित्र चाहिए।

नदी में जब स्वच्छ आरोग्य जल प्रवाहित होता है तब वही जल सेवनीय है, उपादेय है परंतु वही जल जब एक स्थान में अनेक समय तक रुक जाता है या रोगाणु प्रवेश कर लेते हैं या गंदगी फैल जाती है या सड़ जाता है तो वही जल रोगोत्पादक/अपकारक हो जाता है। इसी ही प्रकार जब संप्रदाय गतिशील, उदार, पवित्र रहता है तो उपकारी रहता है और निष्क्रिय दिखावा, रूढ़ी, हठग्राही, धर्मांधता, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, असहिष्णुता आदि से ग्रसित हो जाता है तो विकासकारी के परिवर्तन में विनाशकारी बन जाता है। इस ही प्रकार विज्ञान में भी जान लेना चाहिए।

प्रायः प्रत्येक संप्रदाय का उद्भव, अन्याय, अत्याचार, मिथ्या परंपरा, पापाचार के विनाश के लिए तथा जीवों को सुख, अधिकार, समता प्रदान करने के लिए हुआ है। प्रत्येक संप्रदाय के कुछ अच्छे सिद्धांत होते है, कुछ अच्छे व्यवहार के पक्ष भी होते हैं। स्व सिद्धांत को दृढ़ करने के लिए, पल्लवित, पुष्पित, फलित करने के लिए साहित्य रचना, धर्मस्थलों के निर्माण, धर्मशाला, कूप, तडाग, सड़क, चिकित्सालय, भोजनशाला, प्याऊ, विद्यालय, मंदिर, मठ, स्तूपादि के निर्माण करते है, जिससे ज्ञान, विज्ञान, कला, संस्कृति का विकास होता है, कुछ व्यक्तियों के चारित्र निर्माण होता है, परोपकार की भावना जाग्रत होती है, दान की प्रवृत्ति होती है। अधिकांश मंदिर, धर्मशाला, साहित्य विद्यालय, चिकित्सालयों के निर्माण में अनेक संप्रदायों का योगदान है। महापुरुष भी संप्रदायों में होते हैं जो महान् ज्ञानी, गुणी, चारित्रनिष्ठ, परोपकारी, उदात्त एवं आदर्श होते है। यह है संप्रदाय के उज्ज्वल आदर्श पक्ष।

विश्व इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रायः एक संप्रदाय वाले अन्य संप्रदाय वालों को अधर्मी, पापी, नीच, दीन, हीन समझते हैं, कष्ट देते हैं, हत्या करते हैं, धर्मायतन, धर्मस्थल, मंदिर-मूर्ति, धर्मग्रंथ, धर्मगुरु को नष्ट, भ्रष्ट, संहार करते हैं।

युद्ध, विध्वंस संप्रदायों के कारण ही होते है। संप्रदाय के प्रचार-प्रसार के लिए भी दूसरों के देशों के ऊपर आक्रमण करते हैं, दिग्विजय करते हैं, लूटपाट करते हैं, शीलहरण, अपहरण, नर संहार, धनहरण करते हैं। सबसे विचित्र अविश्वसनीय कटु सत्य यह है कि संप्रदाय सद्भाव के लिए जो महापुरुष कार्य करते हैं उन्हीं के भी कुछ अनुयायी एक नया संप्रदाय तैयार करके पुनः एक नयी विषमता को जन्म दे देते हैं। इतना ही नहीं, संप्रदाय सद्भाव के लिए जो भाषण करते हैं उनमें से कुछ विद्वेष को भी फैलाते है कुछ कट्टर संप्रदायी इतने क्रूर, धूर्त, पाखण्डी, पापी होते है कि जिसके समक्ष जो धर्म को नहीं मानते है ऐसे नास्तिक की भद्रता, नम्रता, नैतिकता, परोपकारिता, व्यवहार कुशलता बहुत ही आदर्श होती है। हिंस्र पशु से भी कुछ धर्मांध व्यक्ति अधिक पापी होते हैं क्योंकि अधिकांशतः हिंस्र पशु तो केवल भोजन के लिए दूसरे जीवों को मारते हैं परंतु धर्मांध व्यक्ति विद्वेष घृणा या मत प्रचार के लिए निरपराधी मनुष्यों की भी अप्रयोजनभूत हिंसा करते हैं, धर्मग्रंथ, मंदिर मूर्ति को नष्ट करते हैं।

धर्म आध्यात्मिक विकास, सुख, शांति के लिए है तो विज्ञान शारीरिक सुख-सुविधा के लिए है, 'शरीर माध्यमं खलु धर्म साधनम्' अर्थात् शरीर के माध्यम से धर्म की साधना होती है इसलिये शरीर की सुरक्षा चाहिए। शारीरिक सुख-सुविधा सुरक्षा विकास के लिए जो किया जाता है प्रायः उसको विज्ञान की कोटि में रखा जाता है। वस्तुतः विज्ञान का अर्थ (वि+ज्ञान) विशेष ज्ञान है भले वह आध्यात्मिक हो, भौतिक हो या शारीरिक हो। प्राचीन काल में भी विज्ञान था, पौराणिक काल में भी विज्ञान था, ऐतिहासिक काल में भी विज्ञान था, आधुनिक/वर्तमान काल में भी विज्ञान है और भविष्य में भी विज्ञान रहेगा परंतु यहाँ पर विशेषतः आधुनिक विज्ञान के उपकार एवं अपकार के बारे में विचार करना है।

प्राचीन काल में भी अध्यात्मिक विज्ञान के समानान्तर अन्य विज्ञानों का भी विकास हुआ था यथा-आयुर्वेद (चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विज्ञान) गणित ज्योतिष, भाषा, व्याकरण, धनुर्विद्या (अस्त्र-शस्त्र विज्ञान) शिल्प, कला, संगीत, नृत्य, यान-विमान निर्माण विज्ञान आदि-आदि उस समय में भी सार्थक विज्ञान का सदुपयोग तथा

पहुंचने के पुरुषार्थ में सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। आधुनिक विज्ञान में प्रकृति भौतिक वस्तु का ही शोध-बोध अधिक हो रहा है पूर्वाग्रह पूर्व परंपरा प्राचीन ग्रंथ, अंधविश्वास या धर्म इसका आधार प्रायः नहीं है। इसका अधिकांश आधार प्रकृति या सत्य अथवा कार्य-कारण संबंध है। शोध-बोध का माध्यम इंद्रिय जनित ज्ञान भौतिक यंत्र है। इसलिये इसकी सीमा बहुत ही अल्प है। अतएव विज्ञान में अमूर्तिक आत्मा, परलोक, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य आदि अमूर्तिक द्रव्य या अति सूक्ष्म द्रव्य के बारे में शोध-बोध अधिक नहीं हुआ है। इसलिये इससे सार्वभौम सत्य का न ज्ञान हो सकता है, न आध्यात्मिक विकास हो सकता है, न आध्यात्मिक शांति मिल सकती है, यह विज्ञान की सबसे बड़ी कमी है। जिसकी आपूर्ति केवल धर्म के माध्यम से ही हो सकती है। धार्मिक संप्रदाय सहायक बन सकता है। धर्म ही सार्वभौम सत्य, सुख, शांति के लिए कारण है। अतएव धर्म सहित ही संप्रदाय कल्याणकारी है तथा विज्ञान भी उपकारी है।

महात्मा गाँधी ने कहा था-

Since is blind without religion and religion is lame without science धर्म बिना विज्ञान अंधा है, एवं विज्ञान बिना धर्म पंगु है। विज्ञान में भी कुछ दोष-गुण हैं। अतः परीक्षण-निरीक्षण किये बिना ग्रहण करना प्रबुद्ध (प्रज्ञा-धनी) के लिए हितावह नहीं हैं।

We can't like blind religion not also only science but we want a scientific religion.

हम मिथ्या धर्म को नहीं चाहते तथा केवल भौतिक विज्ञान को भी नहीं चाहते परंतु एक वैज्ञानिक धर्म को चाहते हैं।

विज्ञान के दुरुपयोग से और भी अनेक अनर्थ होते हैं। वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र के दुरुपयोग के कारण जो हानि होती है वह तो प्रसिद्ध है ही परंतु अन्य मनोरंजन, दूरसंचार, मानव परीक्षण यंत्र, विलासिता के यंत्र एवं उपकरण, यान, वाहन, विमान, कल-कारखाने आदि के असत् उपयोग, अति प्रयोग से भी बहुत हानि होती है।

है, जिसके कारण चर्म कैंसर आदि अनेक रोग हो रहे हैं। यान, वाहन, विमान, कल-कारखानादि के कारण वायु प्रदूषण, शब्द प्रदूषण और तापमान बढ़ रहा है।

उपर्युक्त साक्षात् हानि के साथ-साथ अनेक परोक्ष एवं परंपरा की हानियाँ भी हैं। यांत्रिक संसाधन के कारण मानवीय संसाधन का मूल्य घटा है क्योंकि एक यंत्र अनेक मानवों के कार्य करने के कारण मानव शक्ति की आवश्यकता घटी है जिससे अनेक मानव बेकार बेरोजगार हो जाते हैं। इसके साथ-साथ कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग भी प्रभावित हुआ है, इसमें हानि हुई है इसके कारण गरीब अधिक गरीब एवं बेकार हो रहे हैं और पूँजीपति अधिक पूँजीपति बन रहे हैं। इससे आर्थिक विषमता अधिक बढ़ रही है। इससे पुनः ईर्ष्या, घृणा, हीन भाव, अहंभाव, शोषक शोषित भाव बढ़ रहे हैं।

वैज्ञानिक यंत्र, संसाधन, यान-वाहन के कारण मानव चलित यंत्र के बदले 'यंत्र चालित मानव, हो रहा है।' घर में जलाशय (पानी का नल) शौचालय, स्नानागार, मनोरंजन के साधन आदि के कारण व्यक्ति घर में ही नजरबंदी रूप में रहता है। बाहर थोड़ी दूर भी पैदल न चलकर गाड़ी में जाता है। अनाज, मसाला पीसने के लिए घर में ही मशीन, कपड़ा धोने के लिए मशीन, ईंधन के लिए गैस, प्रकाश के लिए विद्युत् होने के कारण व्यक्ति आलसी/निकम्मा/निष्क्रिय तथा परावलंबी हो रहा हैं। जिसके कारण अनेक रोगों का शिकार बनता जा रहा है। इसके साथ-साथ परंपरा से इसके दूरगामी परिणाम भी अहितकारी है। यथा-परस्पर सहकार, संगठन, प्रेम, सामाजिक भाव, आदान-प्रदान कम होते हैं। जिसके कारण भौतिक रूप से/यंत्रों के द्वारा/संचार माध्यम से पृथ्वी एक संयुक्त परिवार का रूप ले लेने के बाद भी एक ही घर में रहने वालों में दूरी बहुत ही बढ़ रही है। रास्ते में, पास-पड़ौसी में कोई विपत्ति में पड़ने पर, घायल होने पर, बलात्कार, चोरी-डकैती के शिकार होने पर, रोगी होने पर, मृत्यु के समय भी देखने वाले परिवार के जन पड़ौसी वाले, बंधुजन भी सहायता नहीं करते हैं। इसके कारण असुरक्षा, असहायता, असामाजिकता की

सहानुभूति घट रही है।

आधुनिक विज्ञान के कारण कृत्रिम, रेडीमेड, बासी भोजन का भी प्रचलन हो रहा है इस भोजन में हिंसात्मक स्वास्थ्य हानिकारक केमिकल वस्तुओं का भी प्रयोग होता है। भोजन प्राकृतिक ताजा, पुष्टिकर, तत्त्वयुक्त भी नहीं होता है। रसना प्रिय एवं सुदर्शन बनाने के लिए तेज मिर्च-मसाला भी बहुतायत से प्रयोग करते हैं। उपर्युक्त कारण से व्यक्ति आलसी, परावलंबी, रोगी, दुर्बल, बुद्धिहीन, चटोरा, पापी बन जाता है।

चिकित्सा विज्ञान के विकास के कारण अनेक रोगों के प्रकोप में ह्रास हुआ है, अंधविश्वास से भी बहुत से टूटे हैं, स्वच्छता की ओर ध्यान भी गया है। परंतु आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में प्रकृति, पथ्यापथ्य का ध्यान नहीं रखा जाता हैं, कृत्रिम केमिकल मद्य (अल्कोहल) माँस, अस्थि प्राणियों के अवयवों का भी प्रयोग किया जाता है। रोग एवं औषधि के परीक्षण के लिए मूक, निरपराधी प्राणियों को बहुत सताते हैं, उसकी हत्या भी करते हैं। इसलिये आधुनिक चिकित्सा प्रणाली कुछ अंश में हिंसापरक है, विफल हैं, प्रतिक्रियात्मक रोगोत्पादक है।

इस प्रकार संप्रदाय नैतिक उत्थान के माध्यम से बहुत कुछ अच्छा कार्य करते हुए भी कट्टरता, धर्मांधता, संकीर्णता के कारण बहुत कुछ क्षति पहुँचाया है तथा विज्ञान भी भौतिक उपकरण, प्रकृति के शोध-बोध से मनुष्य को शारीरिक, भौतिक सुख पहुँचाया है, बौद्धिक विकास किया है, अंधविश्वास को दूर किया है। इसके साथ-साथ केवल इन्द्रिय प्रत्यक्ष, यंत्र प्रत्यक्ष को सत्य मानने के कारण, शारीरिक इन्द्रिय सुख को ध्येय मानने के कारण इसमें भी कुपमण्डुकता भोग विलासिता, निकर्मण्यता आदि दोष हैं। इसीलिये दोनों को व्यापक उदार, 'सर्वजीवहिताय सर्वजीव सुखाय' बनने के लिए संप्रदाय को धर्ममय बनना अनिवार्य है। तो विज्ञान को भी धर्ममय बनना अपरिहार्य है। संक्षिप्त से कहे तो धर्म को विज्ञानमय एवं विज्ञान को धर्ममय तथा धार्मिकों को वैज्ञानिक और वैज्ञानिकों को धार्मिक बनाना अनिवार्य है। अर्थात् विश्व को वैज्ञानिक धर्म चाहिये न कि

मुख्यतः सामाजिक, भौतिक अनुशासन है। यहाँ मौलिक, यथार्थ शुद्ध, आध्यात्मिक, सार्वभौम, सार्वकालीन धर्म यथा-अहिंसा, सत्य, क्षमा, मृदुता, पवित्रता, सरलता, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य की विवक्षा न करके उनको प्राप्त करने के उपायभूत जो धार्मिक मत-मतान्तर/मान्यताएँ/पंथवाद/संप्रदाय हैं उसकी विवक्षा है। क्योंकि यथार्थ धर्म कभी भी किसी के लिए भी अपकारक नहीं हो सकता है।

अन्यान्य लेखों में संप्रदाय के गुण-दोषों का सविस्तार वर्णन किया गया है। यहाँ संक्षिप्त वर्णन के साथ-साथ कतिपय अभी तक अवर्णित विषयों के बारे में प्रकाश डालूँगा। जो राजतंत्र जिस संप्रदाय को मानता है वह राजतंत्र भी उस संप्रदाय से कुछ अंश तक अनुशासित होता है। इसलिए उत्तम संप्रदाय को मानने वाला राजतंत्र भी उत्तम होता है और निकृष्ट संप्रदाय को मानने वाला राजतंत्र निकृष्ट होता है। जैसे बौद्ध संप्रदाय से अनुशासित प्रियदर्शी अशोक का राजतंत्र, जैन संप्रदाय से अनुशासित चंद्रगुप्त मौर्य का राजतंत्र, संत समर्थ रामदास से अनुशासित शिवाजी का राजतंत्र, महात्मा गाँधी का हिन्दू संप्रदाय से शासित राजतंत्र।

उपर्युक्त राजतंत्र उस-उस संप्रदाय के अच्छे गुणों से अनुशासित होने के कारण उत्तम बने। जो राजतंत्र निकृष्ट संप्रदाय से या उस संप्रदाय के अच्छे गुणों से अनुशासित नहीं होता है वह निकृष्ट बनता है। यथा-रावण, कंस, दुर्योधन, जरासंध, तैमूरलंग, नादिरशाह, मोहम्मद गौरी, बाबर, अकबर, औरंगजेब आदि के राजतंत्र। इसलिए धर्म संप्रदाय, व्यक्तिगत नैतिक अनुशासन के साथ-साथ परोक्ष रूप से अंशतः राजतंत्र का भी अनुशासन करता है। जैसे-राजपुरोहित, राजगुरु, धर्माचार्य के उपदेश से राजतंत्र का अनुशासित होना। बृहस्पति देवों को, शुक्राचार्य असुरों को, रामदास शिवाजी को अनुशासित करते थे। यदि संप्रदाय का अनुशास्ता उदार, सहिष्णु, परधर्म अविद्वेषक होता है तो स्व-संप्रदाय, पर-संप्रदाय, राजतंत्र एवं प्रजा के विकास का कारण बनता है। यथा अशोक आदि। अन्यथा अनुदार, असहिष्णु, धर्मांध, परधर्म

"अकबर महान्" रूप में मानो और खुद अभी भी मान रहे हैं।

धर्म संप्रदाय के अनुसार जहाँ राजशासन चलता था और संप्रदाय यदि संकीर्ण, बर्बर, धर्मांध हो तो दोषी को दोष से भी अधिक शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, मानसिक दण्ड देते थे। दोषी को सुधार का अवसर, वातावरण, सुविधा, शिक्षा, प्रशिक्षण, उपदेश न देकर उसके अंग-उपांग काट देते थे, समाज या देश से निष्कासित कर देते थे, धन हरण कर लेते थे, अपमानित करते थे, उसको मृत्युदण्ड दे देते थे, इतना ही नहीं उनके परिवार के निरपराधी व्यक्तियों को भी मार डालते थे। वर्तमान में भी यह क्रूर परंपरा कुछ असभ्य, अशिक्षित, धर्मांध, प्राचीन पंथी संप्रदाय में जीवित है।

राजतंत्र का भी आविष्कार प्रजा के हित के लिए हुआ था। बलवानों के अत्याचारों से दुर्बलों की रक्षा करना तथा सर्व प्रजा की सुरक्षा, समृद्धि, स्वास्थ्य, भोजन, पानी एवं निवास की व्यवस्था करना राजतंत्र का परम कर्त्तव्य है। न्याय करना एवं अन्यायी को उचित दण्ड देना भी राजतंत्र (वर्तमान में न्यायालय) का कर्त्तव्य है। राजतंत्र के अभाव से राष्ट्र में अराजकता फैल जायेगी, जिससे प्रजाओं के धन, जीवन की सुरक्षा नहीं हो पायेगी, बलवान निर्बलों को कष्ट देंगे, नष्ट करेंगे। जिसके फलस्वरूप प्रजाजन सुख-शांति से जीवन यापन नहीं कर पायेंगे। इसके बिना आध्यात्मिक साधना/धर्म साधना नहीं हो पायेगी। इसके अभाव से आध्यात्म शांति की उपलब्धि नहीं होगी। इससे स्पष्ट होता है कि राजतंत्र लौकिक सुख के लिए तो कारण है ही परंतु परंपरा से परोक्ष रूप से आध्यात्मिक शांति के लिए भी कारण है।

प्राचीन राजनीति राजा के द्वारा निर्मित होने के कारण अधिक उदार, व्यापक एवं सर्व प्रजाओं के लिए अधिक हितकारी नहीं थी, कुछ नीति उत्तम होने पर भी स्वार्थनिष्ठ, सत्तालोलुपी, क्रूर राजाओं ने साधारण प्रजाओं के योग्य अधिकारों से भी प्रजाओं को वंचित रखा हैं। केवल ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार या सत्ता लोलुपता के कारण अथवा दूसरों को कष्ट देने के लिए, अपमानित करने के लिए, दूसरों के धन, जन,

की सुरक्षा के लिए न्यायोचित युद्ध किया। अप्रयोजनभूत हिंसा से दूर रहे। प्रियदर्शी अशोक, शिवाजी आदि राजा इसके लिए उदाहरण स्वरूप हैं। परंतु ऐसे आदर्श राजाओं की संख्या न्यून है।

कुछ राजा प्रजाओं का शोषण करके दूसरे देशों को लूटकर जो अन्यायपूर्वक धन संग्रह करते थे उनमें से कुछ राजा विलासमय जीवन यापन करते थे, भले प्रजा भूखे, नंगे बेघर होकर, तड़प-तड़प कर मरे। उनमें से कुछ राजा अहंकार की पुष्टि के लिए, अपनी सांप्रदायिक कट्टरता को बढ़ाने के लिए या प्रजाओं को अंधकार में रखने के लिए, अपने दोषों को ढ़कने के लिए, स्वयं को धार्मिक, उदार, दानी, कलाप्रिय बताने के लिए, विलासिता से बचे-खुचे कुछ धन से आराधना स्थल धर्मशालादि बनवा लेते थे और कुछ दान-पुण्य कर लेते थे, ऐसे राजा अधिकतर धार्मिक कट्टर होते थे या विलासप्रिय अथवा क्रूर होते थे। ऐसे राजा प्रत्येक देश के इतिहास में भरे पड़े हुए हैं।

प्राचीन पुराण एवं इतिहास के अध्ययन से एक विचित्र तथ्य उजागर होता है। यदि पुराण एवं इतिहास सत्य है तो वह विचित्र तथ्य यह है कि प्राचीन राजा भले वे राज्यावस्था में न्यायवान हो या अन्यायी हो, वे कभी न कभी उनमें से बहुतर आगे चलकर धर्मात्मा, त्यागी, संन्यासी, साधु, तीर्थंकर, गणधर, अरिहंत, तथागत (बुद्ध), खलीफा, पोप, धर्म प्रचारक, समाज सुधारक बन जाते थे। यथा जैनियों के सब तीर्थंकर, सब चक्रवर्ती, कुछ अर्द्ध चक्रवर्ती, अनेक राजा-महाराजा, भरत-बाहुबलि, चंद्रगुप्त मौर्य, अशोक, पंच पाण्डव, महात्मा बुद्ध आदि-आदि। शायद इसलिये कि धन-वैभव, राजसत्ता, भोग-राग में वस्तुतः सुख-शांति नहीं है इसका परिज्ञान हो जाता होगा। ऐसा विचित्र सत्य वर्तमान के राजनेता, उद्योगपति में देखने में बहुत ही कम आता है। शायद इसीलिये प्राचीन लेखक, कवि प्राचीन राजाओं की प्रशंसा की हो।

प्राचीन काल की विभिन्न राजनीति एवं उसके प्रायोगिक स्वरूप एवं वर्तमान

राजा ही प्रजा, प्रजा ही राज्य है। प्रजा राजा की नियुक्ति एवं पदच्युति का पूर्ण अधिकार रखती है। पहले भी कभी-कभी प्रजा राजा की नियुक्ति एवं पदच्युति करती थी परंतु ऐसी घटना बहुत ही विरल होती थी। प्राचीन काल में कुछ काल में, कुछ देशों में, कुछ प्रजा वासल्य राजाओं के शासनकाल में प्रजा सुखी थी। जैसे विक्रमादित्य के शासन काल में। परंतु ऐसा यदा-कदा ही होता था। प्रायः राजा के अन्याय के विरुद्ध कुछ बोलना या करना मृत्यु को निमंत्रण था। अभी तो एक सामान्य नागरिक भी राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्य सरकार, न्यायालय, केन्द्र सरकार तक के अन्याय के विरुद्ध बोल सकता है। न्यायालय में कार्यवाही कर सकता है।

प्राचीन काल में थोड़े से भी कारण से, द्वेष से, राज्य विस्तार के लिए, दूसरों को अपमानित करने के लिए या अहंभाव को प्रदर्शन के लिए दूसरों के देशों के ऊपर आक्रमण कर लेते थे। प्रायः अभी ऐसा दुःसाहस कार्य कोई शीघ्रता से नहीं करता है। ऐसा कोई भी समस्या का समाधान वर्तमान में अस्त्र-शस्त्रों से कम होता है किन्तु आपसी चर्चा, समझौता से अधिक होता है। आक्रमण, युद्ध, दिग्विजय जैसे क्रूर, हिंसक, पर-पीड़क, विध्वंसक कार्य करके भी पहले के कुछ लोग इसे धर्म का रूप दे देते थे और इसे 'अश्वमेघ यज्ञ', 'पुण्य का फल' आदि नाम से अभिहित करते थे। कुछ राजा तो स्वयं को भगवान् का अवतार या स्वयं को भगवान् रूप से घोषित करते थे। कुछ चापलूस लोग अपनी निहित स्वार्थसिद्धि के लिए भी ऐसा करते थे और मनगढ़न्त, अतिरंजित, असत्य, विरुदावली की रचना करते थे और गाते भी थे।

वर्तमान में भी राजनीति में कुछ कमियाँ हैं परंतु ज्यादा कमियाँ अधिकांश स्वार्थी, क्षुद्र, धूर्त, नेताओं में है। उनकी कथनी-करनी, अंदर-बाहर में आकाश-पाताल का अंतर रहता है। उनका अधिकांश कार्य 'मुँह में रामनाम-बगल में छुरी' के समान होता है। वे 'बगुला भगत' समान बाहर से सफेद अंदर से काले होते हैं। लोकतंत्र या साम्यवाद का नारा लगाते हैं परंतु अंदर में तानाशाही, शोषणकारी, भ्रष्टाचारी, पूँजीपति, घोटाले के दादा रहते हैं। जिस प्रकार बिल्ली जब चूहे को पकडने

बहाते हैं परंतु जनता का खून पीते, खून बहाते हैं। इनकी नीति है-

**सत्य अहिंसा और सेवा से**
**बस इतना ही नाता है।**
**दिवालों पर लिखवाते हैं**
**दीवाली पर पुत जाता है।**

**जहाँ तुम्हारा पसीना बहेगा,**
**वहाँ हम खुन बहा देंगे।**
**वोटों के लिए दिवालों पर लिखवा देंगे**
**बाद में दीवाल ही गिरवा देंगे।**

## विचार-मंथन

1. चक्षु स्वभावतः स्वयं को नहीं देखती है। उसी प्रकार व्यक्ति भी स्वयं को कम देखता है। चक्षु जैसे बाह्य वस्तु के आकार-प्रकार, छोटा-बड़ा, सफेद-काला रंग को देखती है उसी प्रकार व्यक्ति भी दूसरों के गुण-अवगुण को अधिक देखता है, स्वयं के नहीं। इतना ही नहीं दूसरों को दिखाने के लिए विभिन्न पोशाक, अलंकार धारण करता है, बन-ठनकर चलता है, बोलता है, घर बनाता है, भोजन करता है, फैशन करता है। इससे भी आगे अच्छा काम करके सुख्यात बनना चाहता है। यदि सुख्यात बनने की योग्यता नहीं तो बुरा काम करके कुख्यात भी बनना चाहता है। इस प्रवृत्ति से जो ऊपर उठकर स्वयं का परीक्षण, निरीक्षण, शोध, बोध करता है वह ही दूसरों के लिए प्रियदर्शी, आदर्श, आराध्य बन जाता है।

2. मनुष्य प्राचीन से शिक्षा लेकर वर्तमान में पुरुषार्थ करके भविष्य के लिए प्रयाण करता है। प्राचीन की अच्छाई से ही शिक्षा प्राप्त नहीं होती है परंतु बुराई से भी शिक्षा प्राप्त होती है। अच्छाई को अच्छे रूप में ग्रहण करता है एवं बुराई से जो हानि

का विकेन्द्रीकरण, उदार-विचारधारा, अन्य मत को समझने की कोशिश, दास-प्रथा निषेध, सतीदाह-प्रथा निषेध, बाल-विवाह निषेध आदि आधुनिक युग की अच्छाइयाँ हैं। परावलंबन, फैशन का अंधानुकरण, भ्रष्टाचार, मिलावट, आलस्य, अश्लील गाना-चित्र-सिनेमा आदि आधुनिक युग की बुराइयाँ हैं।

3. किसी भी उपलब्धि से भी उसका सदुपयोग और भी दुर्लभ है। जैसे-अणु बम का सदुपयोग जनकल्याण में लगाना है परंतु विश्व युद्ध के समय में हिरोशिमा, नागासाकी के ऊपर बम डालकर जन-धन का विध्वंस करना उसका दुरुपयोग है। उसी प्रकार धन का उपयोग परोपकार, दान जन-कल्याण, धर्म-क्षेत्र में लगाना है परंतु धन प्राप्त करके गर्व करना, व्यसनी बनना, आलसी बनना दुरुपयोग है। ज्ञान का सदुपयोग आत्मकल्याण करना, अज्ञान-मोह रूपी अंधकार को दूर करना है परंतु ज्ञान से अहंकारी बनना, संकीर्ण-स्वार्थ में लगना, दूसरों को ठगना दुरुपयोग है। धर्म का सदुपयोग स्वयं को सहज, सरल, पवित्र, सुखी, शांत बनाना एवं दूसरों को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना है। धर्म का दुरुपयोग धर्म के नाम पर अंधविश्वास, रूढ़ि, पाखण्डता, बाह्याडंबर, संकीर्णता, ईर्ष्या, द्वेष, भेद, कलह, युद्धादि को बढ़ावा देना है।

4. संभव हो तो स्व-उपकार के साथ-साथ परोपकार करना चाहिए। परोपकार नहीं कर पाना पाप नहीं है परंतु परोपकार के बहाने से दूसरों को ठगना या अपकार करना पाप है। जैसे प्यासे को पानी पिलाना पुण्य है। पानी के अभाव से प्यासे को पानी नहीं पिलाने से पाप नहीं होता है परंतु पानी के बहाने से विष पिलाना या उसे अभद्र शब्द बोलना, अभद्र व्यवहार करना पाप है। अनेक लोग कहते फिरते हैं कि मेरे पास धन, साधन या समय नहीं है इसलिये मैं परोपकार नहीं कर पाता हूँ परंतु वे ही व्यक्ति दूसरों के अपकार करते रहते हैं। उपकार करने के लिए साधन, समयादि नहीं है तो अपकार के लिए साधनादि का क्यों प्रयोग करते हैं।

5. जैसे-पहाड़, समुद्र दूर से सुंदर दिखाई देते हैं, ढोल की आवाज कर्ण प्रिय लगती है परन्तु पहाड़ में ऊँचा-नीचा, पत्थर-कंकर, काँटा, हिंस्र-पशु-डाकू भी होते

दिखाई देते हैं परंतु अंतरंग से कुटिल, दंभी, झगड़ालु, निंदक, पाखण्डी पाये जाते हैं।

6. भात बनने के लिए चावल, अग्नि, पानी, बर्तनादि की आवश्यकता होती है, अनाज उत्पादन के लिए बीज, खेत को जोतना, जल-सिंचन करना, खाद, बाड़ आदि की आवश्यकता होती है उसी प्रकार धार्मिकता के लिए शुद्ध शाकाहार, धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन धार्मिक बाह्य क्रियाएँ तथा पवित्र आचार-विचार आदि चाहिए परंतु चावल के बिना जिस प्रकार अग्नि आदि से भात नहीं बन सकता है, बीज के बिना अनाज उत्पादन नहीं हो सकता है, उसी ही प्रकार पवित्र आचार-विचार के बिना धार्मिकता नहीं आ सकती है। सामाजिक मान्यता, परंपरा का निर्वाह, आदतन या रूढ़ि आदि के कारण यदि कोई केवल बाह्य धार्मिक रीति-रिवाज को ढोते हैं वे वस्तुतः धार्मिक नहीं है। धार्मिकता का लक्षण महान् लक्ष्य, उदात्त-विचार, नम्र-व्यवहार, पर-पीड़ा रहित कार्य-प्रणाली है।

7. ढोल में पोल होने से ढोल बजता है। 'रिक्त चना बाजे घना' और 'अधजल गगरी छलकत जाय' उक्तियाँ बताती हैं कि तुच्छ, हलके, नीच व्यक्ति अधिक बोलते हैं, दिखावा करते हैं परंतु महान् व्यक्ति धीर-गंभीर, उदात्त-उदार अल्पभाषी होते हैं। डालडा घी को अच्छे सुंदर डिब्बे में रखकर बेचते हैं। परंतु देशी घी को मिट्टी के बर्तन में रखकर बेचते हैं। जादूगर कुछ चमत्कार के माध्यम से कुछ मनोरंजन करता है परंतु सत्य के माध्यम से वैज्ञानिक बहुजन उपकार के कार्य करते हैं। इसी प्रकार चमत्कार आडंबर, रूढ़ि का प्रभाव, क्षणस्थायी होता है परंतु सत्य, धर्म, सदाचार का प्रभाव चिरस्थायी होता है।

## महान् एवं क्षुद्र बनने के उपाय

**(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)**

महान् बनने के उपायों को जानो, इससे विपरीत क्षुद्र पहिचानो।

सीखने की प्रवृत्ति है द्वितीय गुण, नये-नये कार्य में होते निपुण।
जिससे नये-नये ज्ञान भी होते, स्वावलंबी आत्मविश्वासी बनते।। (5)

नवीन-विचार होता तृतीय गुण, उदार प्रगतिशील होता महान्।
संकीर्ण रूढ़ि से भी परे विचार, सत्य समतामय उच्च विचार।। (6)

उच्च आदर्श से हर कार्य करते, स्व-पर-विश्व हितकारी होते।
अन्य को भी महान् बनाना चाहते, स्व-समान ही अन्य को चाहते।। (7)

असंभव का भाव भी नहीं रखते, क्षुद्र काम में संतोष न होते।
धैर्य सहित आगे ही बढ़ते, आशावादी व आत्म-विश्वासी होते।। (8)

अन्तःप्रज्ञा सह आत्म विशुद्धि युक्त, क्षमा मृदुता व वात्सल्य युक्त।
निःस्वार्थ निरहंकारी सहजता युक्त, होते महापुरुष प्रामाणिकता युक्त।। (9)

तीर्थंकर बुद्ध व साधु सज्जन, समाजसेवी व पर उपकारी जन।
इन सब गुणों से बने महान्, 'कनकनन्दी' चाहे सदा महान् गुण।। (10)

## हर मानव पशु-पक्षी-कीट से महान् नहीं

**(राग : छोटा-छोटा गैया....., तेरे प्यार का आसरा.....)**

आहार निद्रा मैथुन परिग्रह संचय से, न होता मानव श्रेष्ठ पशु-पक्षी-कीट से।
तथाहि क्रोध मान माया व लोभ से, आक्रमण युद्ध व हत्या बलात्कार से।।

चेतना की अभिव्यक्ति व श्रेष्ठता के कारण, कोई जीव होता है श्रेष्ठ आध्यात्मिक से।
कारण है चेतना ही जीव का स्वभाव/(लक्षण), स्वभाव श्रेष्ठता से जीव होता श्रेष्ठ।।

आहार निद्रादि नहीं है जीव का स्वभाव, ये सब विभाव-भाव हैं दुःख के जनक।
पशु आदि भी सेवते हैं आहार निद्रादि, मनुष्य से भी अधिक आहार निद्रादि।।

हाथी घोड़ा गाय भैंस घड़ियाल सर्प, मनुष्य से भी करते हैं आहार अधिक।

भविष्य ज्ञान जैसा तिर्यंचों को होता, सामान्य मानव को वैसा ज्ञान न होता।
तथाहि दूरदृष्टि श्रवण घ्राण शक्ति, तैरना उड़ना दौड़ना मानव को न होता।।

इन सब कारणों से वे करते आक्रमण, युद्ध हत्या व बलात्कार व मैथुन।
ऐसा ही जो करता है मानव-अधम, वह न जीता है कभी श्रेष्ठ जीवन।।

महान् उद्देश्य युक्त विवेक व काम, जो करता है स्व-पर विश्व कल्याण।
वही है श्रेष्ठ-ज्येष्ठ सच्चा मानव, 'कनक' को मान्य है सच्चा मानव।।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 19.10.2014, प्रातः 6.20

## संकीर्ण व स्वार्थी मानव न मानते गुणी-सज्जनों को भी

**(चाल : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)**

संकीर्ण पंथ-मत या भावानुसार, सही या गलत मानते (है मानव) स्वार्थानुसार।
सत्य-समता से न होता सरोकार, स्व-पर-विश्व हित हेतु न करते विचार।। (1)

क्रोध-मान-माया या लोभ प्रेरित, करते हैं हर कार्य स्वार्थ प्रेरित।
आहार-भय-मैथुन-परिग्रह सह, करते भाव-व्यवहार मोह युक्त।। (2)

धर्म-कर्म करते इन भाव से युक्त, पढ़ाई नौकरी राजनीति सहित।
कृषि-वाणिज्य या सेवा सहयोग, हित या अहित माने स्वार्थानुसार।। (3)

जिससे गुणी-अगुणी या ज्ञानी-अज्ञानी, हित-अहितकारी-सुभावी-दुर्भावी।
सच्चे-झूठे या सुगुरु-कुगुरु, स्वार्थानुसार मानते मानव अज्ञानी।। (4)

इसलिये तीर्थंकर बुद्ध ईसा, सुकरात-मीरा या साधु-संत।
प्रताड़ित उपेक्षित होते अनादर युक्त, वैश्या चोर आतंकी भी होते आदर युक्त।। (5)

अच्छी वस्तु को सभी न करते आदर, मद्य-माँस तम्बाखू को भी खाते पामर।
अच्छे भाव-व्यवहार सभी नहीं करते, चोरी-ठगी हत्या बलात्कार भी करते।। (6)

क्रोध-मान-माया व लोभ-मोह से, आबद्ध है जीव अनादि काल से।
विषय-वासना व भोगोपभोग से, संयुक्त हैं जीव संज्ञा व दोषों से।। (2)

इनसे परिचित अभ्यस्त होने से, इनका अनुभव होता मोही जीवों से।
इस ही भाव से वे अन्य को भी देखते, इसलिए अन्य में दोषों को ही देखते।। (3)

स्व-दोष छिपाने हेतु पर-दोष कहते, अवचेतन संतुष्टी में ही वे रहते।
यथा चोर ठग कूट-कपट वाले, स्व-दोषों को छिपाते रहते।। (4)

काला चश्मा से सभी काला ही देखते, लाल चश्मा से सभी लाल ही देखते।
चक्कर/(भ्रम) से सभी गतिशील लगते, कड़वा मुँह से सभी कड़वा लगते।। (5)

थन से भी जोंक खून ही पीती हैं, मच्छर भी सदा खून ही पीते हैं।
दोषी को दोष सदा सर्वत्र दिखते, विवेकी दोष-गुण यथार्थ देखते।। (6)

दुर्गंध से सदा दुर्गंध फैलती, सुगंध से सदा सुगंध फैलती।
ज्योति से सदा प्रकाश फैलता, दुर्गुणी को सदा दुर्गुण दिखता।। (7)

दुर्गुण देखना/(जानना) व ग्रहण सरल (है), पानी का निम्नगामी होना सरल (है)।
इसी से पतन भी होना सरल (है), गुणदर्शन व गुणग्राही विरल (है)।। (8)

दुर्गुण त्यागो गुण (ही) ग्रहण करो, गुणी बनकर सभी विकास करो।
इसी हेतु ही यह बना है काव्य, ''कनकनन्दी'' चाहे आत्म-स्वभाव।। (9)

## क्या केवल प्राचीन या अर्वाचीन होना गुण-दोष का मापदण्ड है?

दूर से पर्वत रम्य दिखाई देता है ढोल की आवाज दूर से कर्णप्रिय लगती है, समुद्र दूर से सुंदर दिखाई देता है परंतु पर्वत में कंटक (कर्ण अप्रिय) लगती है तथा

नया चावल, नवीन मूंग कुछ औषध स्वाद में एवं गुण में कम गुणकारी होते हैं परंतु वे ही उचित पुराना होने पर अधिक स्वादयुक्त तथा गुणकारी हो जाते हैं। इसी ही प्रकार कुछ आधुनिक, प्रवर्तमान, तात्कालीन वस्तु, व्यक्ति, शिक्षा, दीक्षा, धर्म, (संप्रदाय/पंथ) प्रथा को कुछ व्यक्ति उत्तम ही मान लेते हैं। ये व्यक्ति अदूरदर्शी, वर्तमान सर्वस्व, आधुनिक पंथी हैं। सामान्यतः ऐसे व्यक्ति को up to date (अद्यतन) कहते हैं। परंतु व्यापक/सार्वभौम/सार्वकालीन/वैश्विक परीक्षण, निरीक्षण करने पर सिद्ध होता है दोनों ही प्रकार के विचारक रूढ़िवादी, पंथवादी, पक्षपाती, अदूरदृष्टि सम्पन्न, हठग्राही, आंशिक सत्यग्राही है। क्योंकि प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों में गुण भी है, दोष भी है। महाकवि कालिदास ने कहा भी है-

**पुराणमित्यैव न साधु सर्वः, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।**
**संतः परीक्ष्यान्यतरत्भजंते मूढः पर प्रत्ययेन बुद्धि।।**

केवल प्राचीन होने से सब कुछ उत्तम नहीं होता और केवल नवीन से सब कुछ हेय नहीं होता। इसी प्रकार प्राचीन सब कुछ हेय नहीं होता तथा नवीन भी सब कुछ उपादेय नहीं होता। जो ज्ञानी, विवेकी प्रज्ञा पुरुष गुणवान् है वह परीक्षा करके उत्तम (सद्गुण) को ग्रहण करता है एवं अविवेकी, अंध अनुकरण करने वाले हैं वे भेड़चाल के समान अनुकरण करते हैं।

प्राचीन काल में पृथ्वी का वातावरण/पर्यावरण/परिशुद्धता प्रदूषण रहित था। भोजन, जल, वायु, स्वास्थ्यप्रद थी। प्रकृति सहृदय माता के सम्मान ममतामयी, हितकारिणी, स्वच्छ, पवित्र, भरण-पोषण, संवर्धन करने वाली थी। व्यक्ति स्वावलंबी थे। वे सामाजिक जीवन यापन करते थे जिसके कारण परस्पर में वे सहायता करते थे। कुछ महान् व्यक्ति सत्य, धर्म, आत्मा को शोध-बोध, प्रचार-प्रसार तथा उपलब्धि के लिए गरिमामय बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करते थे। उसके लिए भाषा व्याकरण दर्शनशास्त्र का प्रणयन तथा विकास किया गया जिससे शिल्पकला, स्थापत्य, चित्रादि का प्रभूत विकास हुआ। धर्म के माध्यम से मानसिक तथा आध्यात्मिक शांति को प्राप्त

भी वंचित रखते थे। सबसे अधिक अन्याय, कलह, भेद, विषमता, युद्ध, विध्वंस, हिंसा, शोषण, धर्म के नाम पर होता था। कुछ एक मतावलंबी अन्य मतावलंबियों को अधिक से अधिक हीन दृष्टि से देखने में, कष्ट देने में, नष्ट करने में तथा उन्हीं के धार्मिक स्थल, उपासना स्थल को क्षति पहुँचाने में, नष्ट करने में ही स्वयं को अधिक से अधिक धार्मिक समझते थे। धर्म के नाम पर हिंसा, धर्मांधता, कट्टरता, अंधविश्वास भी खूब अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित, फलित हुए। एक-दूसरे के धर्म-ग्रंथों को अच्छे गुणों को ग्रहण करने के लिए भी अध्ययन नहीं करते थे। प्राचीन काल के अनेक राजा राज्य, राजनीति के सर्वेसर्वा होते थे। सत्ता का समुचित विकेन्द्रीकरण नहीं होता था। अर्थात् प्रजा को अधिकार बहुत कम मिलता था। कुछ राजा की थोड़े से भी दोष दूर करने की/परिशुद्ध करने की/परिवर्तन/परिस्कार करने की भावना कम रहती थी परंतु प्रतिशोध/पीड़न/कष्ट प्रदान/अपमानित करने की भावना तीव्र रहती थी। दोषी को जीवन्त जला देते थे या चर्म निकालकर नमक, मिर्च डालकर जिन्दा ही छोड़ देते थे या हिंस्र पशु-पक्षी के भोजन के लिए डाल देते थे। कुछ दोषी के आंगोपांग काट डालते थे जिससे उसका जीवन ही मरण से कष्टकर हो जाता था। कुछ को बिना भोजन से ही तड़प-तड़प कर मरने के लिए विवश करते थे। कुछ को हाथ-पैर बाँधकर पेड़ में लटका देते थे जिससे वह क्षुधा-तृषा, सर्दी-गर्मी, वर्षा के कष्ट के साथ-साथ हिंस्र पशु-पक्षी से नोच-नोचकर शरीर को भक्षण करने का मृत्यु से भी भयंकर कष्ट को सहन करता था। इससे सिद्ध होता है कि पहले संकीर्णता, क्रूरता, धर्मांधता, कुछ व्यक्ति में अभी से भी अधिक थी।

सर्व साधारण के लिए शिक्षा सुलभ नहीं थी। गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते थे। कुछ शिक्षक विद्यार्थियों को अधिक दंडित करते थे, परीक्षा के बहाने कठिन कार्य भी कराते थे। अनुचित गुरु-दक्षिणा भी माँगते थे। इस ही प्रकार सर्वसाधारण के लिए अधिक सुलभ चिकित्सा, यातायात, दूरसंचार व्यवस्था (डाक, तार, फोन, रेडियो, टी.वी. खबर, कागज संवाद पत्र) नहीं थी।

और अच्छे गुणों को भी स्वीकार करते हैं। अभी अनेक अंतर्राष्ट्रीय संस्था है रेडक्रास, संयुक्त राष्ट्र संवादि जो कि सब धर्म, सब जाति, सब देशों की सेवा में रत हैं। इस वर्ष (1996) को अंतर्राष्ट्रीय सौहार्द्र वर्ष के रूप में मना रहे हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय प्रेम, संगठन, सहकार का उदाहरण हैं।

वर्तमान का युग वैज्ञानिक युग है। प्रत्येक विषय का विश्लेषण, शोध-बोध, प्रतिपादन, प्रचार-प्रसार, वैज्ञानिक प्रणाली से करने का यथायोग्य प्रयास हो रहा है। इससे संकीर्णता, जड़ता, मिथ्या परंपरा, रूढ़ि, धर्मांधता, घट रही है और तर्कशीलता, बौद्धिकता, प्रगतिशीलता, सत्यग्राहिता, उदारता, व्यापकता बढ़ रही हैं। इसके कारण Mine is Right (जो मेरा है सो सब खरा) के परिवर्तन में Right is Mine (जो खरा है सो मेरा) का पक्ष प्रबल हो रहा है जिससे बौद्धिक विकास के साथ-साथ क्षुद्रमतवाद, टकराव दूर हो रहा है।

आधुनिक युग की भी कुछ बुराइयाँ हैं। वैज्ञानिक उपकरण के कारण मानव चालित यंत्र के बदले यंत्र चालित मानव हो रहा है। जिन यंत्रों का निर्माण मानव ने अपनी सहायता के लिए किया था उन यंत्रों के अधीन/पराधीन मानव होता जा रहा है। जिसके कारण मानव परावलंबी, आलसी, निष्क्रिय होता जा रहा है, जिससे अनेक रोगों के शिकार होता जा रहा है। थोड़ी दूर भी मनुष्य चलना नहीं चाहता है, शारीरिक परिश्रम को हीन दृष्टि से देख रहा है। यह परमाणु युद्ध से भी भयंकर है।

वर्तमान में धार्मिक अंधानुकरण के बदले रहन-सहन, वेशभूषा का अंधानुकरण अधिक हो रहा है। शीत प्रधान देश के योग्य वेशभूषा, खान-पान या सिनेमा, टी.वी. के नर्तक-नर्तकी के रहन-सहन, वेशभूषा का अंधानुकरण करते हैं, जो ग्रीष्म प्रधान देश के लिए प्रतिकूल है या स्व-संस्कृति या सभ्यता के प्रतिकूल है। जैसे-सूट, कालाकोट, टाई, अर्द्ध नग्न पोषाक, चाय, कॉफी, शराब, धूम्रपान, तम्बाकू सेवन,

आवासीय समस्या, यातायात की समस्या, पर्यावरण की समस्या, स्वास्थ्य की समस्या आदि उत्पन्न होती है। नगर में भीड़ (अधिक जनसंख्या) होते हुए भी समाज (परस्पर उपकार करते हुए रहने वालों का समूह) नहीं होता हैं। एक-दूसरों के दुःख-सुख में सहयोगी नहीं होते हैं। एक ही मोहल्ले की एक ही गली में आस-पास रहने वाले भी परस्पर को नहीं पहचानते हैं। पड़ौसियों के यहाँ चोरी, डकैती, बलात्कार, दुर्घटना, रोग, अग्निकाण्ड, मृत्यु होने पर भी सहायता नहीं करते हैं, संवेदना प्रकट नहीं करते हैं। डॉ. राधाकृष्णन ने सत्य ही कहा था आज मनुष्य पक्षी बनकर आकाश में उड़ रहा हैं मछली बनकर समुद्र में तैर रहा है परंतु मनुष्य बनकर भातृभाव से, प्रेम से, सहकार से कंधों से कंधा मिलाकर धरती पर चलना नहीं सीखा है। दिखावा, बनावटी, कृत्रिमता, आत्मकेन्द्रित जीवन/स्वार्थ निष्ठ जीवन/मनुष्य की सरसता, सहजता, व्यापकता, सहकारिता को विरस, असहज, संकीर्ण, स्वार्थनिष्ट में परिवर्तित कर रहा है।

वर्तमान जीवन का बड़ा अभिशाप है तनाव। मनुष्य तृष्णा के कारण, भोग विलासिता के कारण, विकृत मनोदशा के कारण तनावमय जीवन जी रहा है। अव्यवस्थित, व्यस्तमय अर्थात् आपा-धापी, परावलंबन-जीवन प्रणाली के कारण मानव का जीवन easy नहीं है। जिन वैज्ञानिक उपकरणों का आविष्कार स्वयं की सुविधा के लिए किया था उसके असदुपयोग या अतियोग के कारण वही उसके लिए अभिशाप बन रहे हैं।

अतः भूतकालीन गुणों को ग्रहण करे एवं गलतियों से शिक्षा प्राप्त करके वर्तमान में विवेकपूर्वक जीवन जीकर उज्ज्वल आदर्शमय भविष्यत् की ओर सतत गतिशील रहना चाहिए जब तक हमें पूर्ण सत्य, पवित्र, परम, अक्षय-अनंत-सुख-ज्ञान-वीर्य की उपलब्धि नहीं हो जाती हैं। दूसरों के दोष देखकर दोषी से न घृणा करे

(राग : भला किसी का कर न सको तो.....)

पटना के गाँधी मैदान में, दशहरा के रावण दहन में।
अफवाह से भागदौड़ में, बत्तीस जन की मृत्यु अकाल में।।

पाँच लाख की भीड़ जुड़ी थी, अव्यवस्था की मेला भरी थी।
सभी गेट भी नहीं खुले थे, विशिष्ठ जन हेतु (ज्यादा) खुले थे।।

अफवाह फैला भ्रम मात्र से, बिजली का तार गिरा खंभे से।
भागो! भागो! सब भागते गये, भेड़-भेड़िया चाल को पकड़े।।

जो गेट खुला था वह भी अधूरा, अव्यवस्था का लगा था डेरा।
जब भाग रहे थे लोग भय से, पुलिस मार रही थी निर्ममता से।।

महिला व बच्चे मरे अधिक, घायल भी हुए सौ से अधिक।
घायलों की न पर्याप्त चिकित्सा, प्रारंभ हुए राजनीति तमाशा।।

छोटा-सा तार पड़ा था नीचे, बिना करंट के तार था नीचे।
किन्तु अफवाह का करंट चला, मृत्यु का ताण्डव नृत्य भी चला।।

भीड़ मनोविज्ञान का हुआ शिकार, अव्यवस्था का पड़ा प्रहार।
अनुशासनहीनता की यह कहानी, शिक्षा हेतु 'कनक' से कविता बनी।।

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 15.10.2014, प्रातः 7.30

## कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य

प्रत्येक जीव सुख की कामना करता है, उसमें रमण करना चाहता है, वह सुख न मिलने पर दुःखी होता है और सुख से अलग होना नहीं चाहता है तथा दुःख को भोगना भी नहीं चाहता है। इनके कारणों के शोध से ज्ञात होता है सुख से जीवन को प्रसन्नता/आनंद/आह्लाद/संतोष/शांति का अनुभव होता है और दुःख से आकुलता,

समान है। न कोई छोटा, न कोई बड़ा, न कोई हीन, न कोई महान्। प्रत्येक जीव का अधिकार समान है। परंतु परिस्थिति/अवस्था आदि के कारण जीव में अंतर परिलक्षित होता है। जैसे कि शिशु, किशोर, युवक, प्रौढ़ादि अवस्थाओं से युक्त मनुष्य में अंतर पाया जाता है। केवल उस अंतर के कारण यदि कोई युवक या प्रौढ़, शिशु काल हीन भाव से देखेगा और दुष्ट व्यवहार करेगा तो वह सर्वथा अनुचित होगा। इसके विपरीत शिशु तो बड़ों के स्नेह, आदर, सुरक्षा, सुशिक्षा का पात्र है। इस ही प्रकार परिस्थिति वशतः जो सबल, समर्थ, साधन सम्पन्न, प्रबुद्ध, महान् धार्मिक जन है उसके द्वारा तो जो दीन, हीन, दुर्बल, पापी, पतित जीव है वह स्नेह, सुरक्षा, सुशिक्षा का पात्र है। इसके विपरीत जो बड़े होकर भी छोटों से दुर्व्यवहार करते हैं उससे बड़े भी छोटे (हीन) हो जाते हैं। प्रायः धर्म में (यथार्थ से कहो तो पंथ, मत, संप्रदाय, कुधर्म) समाज में, राजनीति में जो स्वयं को बड़ा (महान्, धार्मिक, योग्य) मानते हैं वे छोटे को यातना, कष्ट, ताड़न, अपमान, मरण देना ही अपनी महानता मानते हैं। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ विशद वर्णन नीचे कर रहा हूँ। जो शारीरिक बल से सम्पन्न होते हैं वे दुर्बल जीवों को शारीरिक पीड़ा देते हैं, यहाँ तक कि दुर्बल को मारते है। जैसे-बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। शेर, चीतादि खरगोशादि को मारकर अपना भोजन बना लेते हैं।

बौद्धिक बल सम्पन्न जीव हीन-बुद्धिमानों को कष्ट देना अपनी शान मानता है। बुद्धि के बल पर दूसरों को ठगता है, दूसरों को शोषण करता है, दूसरों को पराधीन करता है, अपने क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों का समग्रता से प्रयोग करता है। यथा-मनुष्य अपनी बुद्धि बल से शरीर बल से सम्पन्न हाथी, घोड़ा, सिंहादि का शोषण करता है, इस ही प्रकार व्यापारी बुद्धि वाला उपभोक्ताओं का, शिक्षित व्यक्ति अशिक्षितों का, ठेकेदार या पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करता है।

जो शरीर बुद्धि एवं साधन सम्पन्न होते हैं वे और भी अधिक दूसरों का शोषण

एक सम्प्रदाय वाले अन्य सम्प्रदाय वालों के साथ कैसे क्रूर, बर्बर, निर्दय, असभ्य व्यवहार करते हैं। इतना ही नहीं, एक ही धर्म (संप्रदाय) गुरु धर्म प्रचारक (पेगम्बर, अवतार, तीर्थंकर, देवदूत) को मानने वालों में भी जो पूजा, बाह्य क्रिया, आचार-विचार में थोड़ा भी अंतर होने पर एक-दूसरों को विधर्मी, पापी, नास्तिक, काफिर मानकर उनसे भी घृणा, द्वेष, कलह, युद्ध करते है। जैसे-मुसलमान और गैर-मुसलमान में, ईसाइयों का गैर-ईसाइयों में आदि। मुसलमानों में भी सिया-सुन्नी, ईसाइयों में कैथेलिक-प्रोटेस्टेंट, वैदिक में वैष्णव-शैव, जैनियों में दिगम्बर-श्वेताम्बर, दिगम्बर में तेरापंथी, बीसपंथी, कांजीपंथी, श्वेताम्बर में स्थानक, मंदिरमार्गी, तेरहपंथी आदि। (जैनियों में विशेषतः शीत युद्ध है)।

‘‘’जीव जीवस्य रक्षण’ अर्थात् जीव परस्पर रक्षक है या ‘‘परस्परोपग्रहो जीवानाम्’’ अर्थात् परस्पर उपकार करना जीवों का धर्म है परंतु अनादि काल से मोही अज्ञानी दुष्ट जीवों ने इस आदर्श सत्य के विरुद्ध जीव जीवस्य भक्षणम् अर्थात् जीव-जीव के द्वारा भक्षणीय है को अपनाया है, साकार किया है। भले यह भक्षण कभी द्रव्य रूप में तो कभी भाव रूप में, कभी धन के लिए तो कभी धर्म के लिए, कभी शारीरिक बल से तो कभी बौद्धिक या भौतिक अथवा सत्ता के बल से। विश्व में समिष्टि रूप में यह परंपरा भूतकाल में थी अब भी है और आगे भी रहेगी परंतु ऐसी परंपरा सर्वथा सर्वदा न हो ऐसी ही उदात्त भावना भानी चाहिए और तदनुकूल क्रिया भी करनी चाहिए। व्यक्तिगत रूप में इस परंपरा को तो सर्वदा के लिए सर्वथा नष्ट कर सकते हैं। आईये समिष्टि के पहले जो अपने अधिकार में है और जो संभव है ऐसी व्यक्तिगत परंपरा को नष्ट करें।

सर्वप्रथम यह सिद्ध किया गया था कि सुख सब चाहते है। इसीलिये सुख प्राप्त करना सबका अधिकार है, कर्त्तव्य है, धर्म है। दूसरों को कष्ट देने वाला कभी भी अपना कर्त्तव्य या धर्म पालन नहीं कर सकता है जो अपना कर्त्तव्य या धर्म पालन नहीं करता है वह कभी भी सुख का अधिकारी नहीं बन सकता है क्योंकि जो दूसरों

संकीर्ण-कट्टर धार्मिक जनों में, नहीं होता है सद्भाव।
अज्ञान-मोहवश वे जन होते हैं, न होता है सद्विश्वास।।टेक।।

अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया, लोभ व होता मिथ्यात्व।
जिसके कारण होता कुभाव, संकीर्ण-कट्टर भाव।।

कृष्ण-नील व कापोत लेश्या से, जब होते हैं अनुरक्त।
संकीर्ण-कट्टर अधिक होते हैं, अग्नि से तैल उतप्त/तैल से अग्नि सहित/(संयुक्त)।।

ऐसे धार्मिक जो होते मानव, न होते उदारमना।
दया दान सेवा परोपकार से, होते हैं विरक्तमना।।

क्रूर कठोर व असहिष्णु होते, होते हैं धूर्त पाखण्डी।
निहित स्वार्थी व भेद-भाव युक्त, होते हैं निंदक दम्भी।।

लोभी व ठगी मायाचारी होते, होते ईर्ष्यालु आतंकी।
वाद-विवाद व कलह करते, होते हैं निकृष्ट पातकी।।

शुभ लेश्या युक्त मिथ्यादृष्टि भी, होते हैं भद्र विनयी।
संकीर्ण-कट्टर क्रूर न होते हैं, होते हैं उदारभावी।।

ऐसे जीव आगे होते हैं सुदृष्टि, पाकर गुरु उपदेश।
श्रावक मुनि के चारित्र पालकर, पाते हैं मोक्ष निवास।।

भद्र मिथ्यादृष्टि आहारदान से, पाते हैं भोगभूमि।
वहाँ से स्वर्ग को गमन करते, बनते हैं पुनः मानव।।

भव्य यदि वे जीव होते तो, करते क्रम से मोक्ष गमन।
संकीर्ण-कट्टर जो धार्मिक होते, करते संसार भ्रमण।।

बिना भी शिक्षा प्रशिक्षण से, होते हैं भाव अनेक।
दबाव प्रलोभन-भय बिना, होते हैं भाव अनेक।।टेक।।

भूख-प्यास व सुख-दुःख, क्रोध मान माया लोभ।
हँसना रोना कामुकता, भय निद्रा चिन्ता क्षोभ।।

पूर्व जन्मों के कर्म जब/(संस्कार से), उदय में आते जीवों में।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव पाकर, परिणाम/(भाव) होते जीवों में।। (1)

यह सब भाव यथायोग्य, अनुभव आते जीवों में।
मानव पशु-पक्षी कीट-पतंग, वनस्पति आदि जीवों में।।

भले शिक्षादि के कारण कुछ, भाव होते न्यूनाधिक।
प्रमुख कारण कर्म है जिससे भाव होते अधिक।। (2)

आत्म ज्ञान व ध्यान संयम, महान् लक्ष्य पुरुषार्थ।
धैर्य समता तप त्याग द्वारा, होते हैं भाव यथार्थ।।

केवल वातावरण या देखादेखी, शिक्षा या कानून द्वारा।
धार्मिक-क्रियाकाण्ड से नहीं, होते विचार सारा।। (3)

ये सब बाह्य कारण हैं, यथा वृक्ष हेतु पानी।
बीज तो मूल/(प्रमुख) कारण है, बीज बिन क्या करे पानी।।

सत्य-तथ्य को जाने मानव, तथाहि करे आचरण।
इसी हेतु ही 'कनकनंदी', गूँथा है सूत्र महान्।। (4)

## स्व-पर-विश्व-हितकारी

### (द्रव्य-श्रुत एवं उसके रचियता)

उससे जो ज्ञान हुआ प्राप्त, उसे पूर्वाचार्यों ने लिखा।।

उसकी टीका वार्तिक वृत्ति, अन्य आचार्यों ने भी की।
ऐसी ही परंपरा की श्रृंखला, अन्य विधाओं में भी हुई।। (2)

अनुवाद समीक्षा आदि के द्वारा, आधुनिकीकरण भी होता।
जिसके द्वारा आधुनिक मानव, उससे लाभान्वित भी होता।।

अन्यथा हम तक सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट ज्ञान नहीं पहुँचता।
आत्मा-परमात्मा-बंध-मोक्ष का, ज्ञान हमें भी नहीं मिलता।। (3)

ऐसा भी अन्य ज्ञान में होता, जो उत्तरोत्तर बढ़ता भी।
अन्यथा हर ज्ञान के लिए, स्वयं को/(से) ही प्रारंभ करना होता।।

इससे न ज्ञान का होता तीव्र विकास, जिससे न होता आत्मविकास।
आत्म-विकास हेतु 'कनक', अध्ययन करे सच्चे शास्त्र।। (4)

हिरणमगरी, सेक्टर-11, दिनांक 02.10.2014, रात्रि 11.50

## नव कोटि से स्वात्म भावना ही सर्वोत्तम

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(राग : तुम दिल की धड़कन.....)**

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा।

अधमा कामचिन्तास्यात्, परचिन्ताऽधमाधमा।। (प. परमानदं स्तोत्र)

हिन्दी- उत्तम स्वात्म चिन्ता है, मोह चिन्ता है मध्यमा।

अधमा काम चिन्ता है, पर चिन्ता अधमा अधमा।।

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।

समीक्षा- आत्मचिन्ता है सबसे उत्तम, जिससे मोह का होता विनाश।
जिससे होते हैं आत्मविश्वास, ज्ञान चारित्र का भी होता विकास।।
इसे ही कहते हैं रत्नत्रय जो, मोक्ष के कारण महान्।
आत्मज्ञान व आत्मध्यान के माध्यम से मानव बनो है भगवान्।।
मोहचिन्ता को मध्यम कहा, मोह जानकर उसका त्याग।
बिन जानते दोषगुणन को, कैसे ग्रहण व कैसे हो त्याग।।
अधम कामचिन्ता है जिससे, आसक्ति की होती है वृद्धि।
तृष्णा उत्पादक व बंधकारक, संसार चक्र की होती (है) वृद्धि।।
परचिन्ता है अधमा-अधमा, पर हेतु जो राग-द्वेष करे।
पर निन्दा अपमान करे व ईर्ष्या घृणा व मोह करे।।
इससे होते हैं वाद-विवाद, कलह विसंवाद युद्ध हत्या।
होते हैं अनेक अनर्थ काम, अतएव पर चिन्ता अधमाधमा।।
परन्तु अज्ञानी मोही जीव, करते हैं विपरीत भाव व काम।
आत्म चिन्ता तो नहीं करते, शेष तीनों चिन्ता के करते काम।।
अष्टमद सप्त व्यसन सेवते, करते क्रोध लोभ माया/(भोग)।
आत्म चिन्तक को गलत मानकर, बाँधते पापघोर तम।।
गुण-गुणी निन्दक होते महापापी, बाँधते वे घोर घाति कर्म।
जिससे संसार में मिले नाना दुःख, अतएव अकरणीय पाप कर्म।।
गुण-गुणी प्रशंसा व अनुमोदना से, होता है पाप कर्म क्षीण।
अतएव आत्मगुण-गुणी प्रशंसा, करने हेतु कनक का सदा मन।।

जिससे होगा वैश्विक कल्याण, अंत में पाओगे मोक्ष भी।।स्थायी

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा तीर्थेशों ने,
प्रत्येक महान् कार्य के हेतु, यह सूत्र प्रयोग है सभी में।
आत्मविश्वास सह ज्ञान चाहिए तथाहि सदाचरण भी,
जिससे होता हर कार्य संपादन, अन्य कारण सभी सहित भी।। (1)

'शुद्ध-बुद्ध आनंद' प्राप्त करना ही, लक्ष्य है भारतीय संस्कृति का,
चारों आश्रम का परम लक्ष्य, तथाहि जीवों का स्व-स्वरूप है।
शुद्ध से बुद्ध बनते हैं जीव, पाते हैं अनंत आनंद को,
अनंत आनंद प्राप्त हेतु ही, प्राप्य है शुद्ध-बुद्ध को।। (2)

'सत्य शिव सुन्दर' आनंद घन, सच्चिदानंद व परिनिर्वाण,
अनंत ज्ञानदर्शन सुख वीर्यमय, यह ही जीवों का परमधाम।
इसी से ही ज्ञान-विज्ञान जन्मे, सभ्यता-संस्कृति-संस्कार भी,
शिक्षा कला व आयुर्वेद जन्मे, गणित संगीत (विश्व) विज्ञान भी।। (3)

अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह व यम नियम,
नीति सदाचार दर्शन (संविधान) कानून, भोजन भजन व ध्यान।
पर्व परम्परा रीति रिवाज व, पर्यावरण सुरक्षा स्वच्छता भी,
भाषा राजनीति व्याकरण साहित्य, नृत्य नाटक योगासन भी।। (4)

विश्व मैत्री व विश्व शांति सभी, इसी में ही गर्भित होते हैं,
भारतीय संस्कृति है आध्यात्मिक, संस्कृति जो विश्व संस्कृति है।
आकाश में यथा समाहित विश्व, भारतीय संस्कृति तथा है,

**(राग : छोटी-छोटी गैया....., दुनिया हँस.....)**

मेरा मूल्यांकन मैं ही करूँ, आध्यात्मिक दृष्टि से मुझसे करूँ।
सर्वज्ञ जानते हैं पूर्ण रूप से, अज्ञानी मोही से मूल्यांकन न करूँ।। (स्थायी)

निश्चयनय से मैं हूँ सिद्ध, अनंत ज्ञान-दर्शन सुख समृद्ध।
व्यवहार से भले मैं अशुद्ध, तन-मन-इन्द्रिय व कर्म आबद्ध।। (1)

यथाहि मिट्टी से आबद्ध हीरा, मिट्टी रूप न होता है तथापि हीरा।
तथाहि मैं हूँ चिन्मय रूप, तन-मन-इन्द्रिय परे स्वरूप।। (2)

अल्पज्ञ/(छद्मस्थ) न जानते अमूर्तिक रूप, अतएव न जानते मेरा स्वरूप।
शिकारी शिकार को देखे भोजनमय, तथाहि अज्ञानी मुझे जाने भौतिकमय।। (3)

भौतिक से मूल्यांकन मेरा न होता, सच्चिदानंदमय मूल्य जो होता।
अनंत चक्रवर्ती व इन्द्र सहित, मेरा मूल्यांकन हेतु न होते समर्थ।। (4)

मैं नहीं हूँ कोई भौतिकमय, तन-मन-इन्द्रिय व जड़ नाममय।
जिसका मूल्यांकन करे व्यापारी/(जन), राग-द्वेष-मोह-कामासक्त जन।। (5)

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र द्वारा, समता-शांति व सत्य के द्वारा।
ध्यान-अध्ययन व निस्पृह द्वारा, क्षमा मार्दव व आर्जव द्वारा।। (6)

शौच संयम व धैर्य के द्वारा, मूल्यांकन करता हूँ भावना द्वारा।
उदार भाव आत्म अनुशासन द्वारा, मूल्यांकन करता हूँ (मैं) लक्ष्य के द्वारा।। (7)

बाह्य आडंबर सत्ता संपत्ति द्वारा, ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि द्वारा।
मेरा मूल्यांकन न करूँ मैं कभी, इसी के द्वारा न करूँ अन्य से कभी।। (8)

यह सब अनात्मा व भौतिक दृष्टि, रागी मोही तृष्णावान् कामी की दृष्टि।
इससे मेरा मूल्यांकन होगा विपरीत भी, 'कनक' को अमान्य ऐसी प्रवृत्ति/(कुदृष्टि)।। (9)

वैश्विक दृष्टिधारी I.Q., E.Q., S.Q, की शक्ति के धारक असाधारण प्रतिभाधारी वैज्ञानिक संत प्रवर श्रमण आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ के सान्निध्य में अंतर्राष्ट्रीय 13वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी का महान् आयोजन धर्म-दर्शन-विज्ञान के शोध-बोध की पर्याय बन चुकी आन-बान-शान-स्वाभिमान की ऐतिहासिक नगरी उदयपुर के हिरणमगरी, सेक्टर-11 के आदिनाथ भवन में देश-विदेश से पधारे उदार शोधार्थी वैज्ञानिक वृन्द की उपस्थिति में ज्ञान-विज्ञान की महती प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ। दिनांक 09-10-11 नवम्बर, 2014 की त्रय दिवसीय इस सेमिनार में बहुआयामी नवोन्मेष नवचैतन्यकारी युग परिवर्तनकारी झलकियाँ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्राप्त हुईं। वैसे इस संगोष्ठी का समसामयिक युग प्रबोधनकारी विषय ''जैन सिद्धांत-परम विज्ञान, आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों से परे...'' रहा, जिस पर देश-विदेश के आचार्यश्री के अंतर्राष्ट्रीय प्रभावक शोधार्थी वैज्ञानिक व नवागन्तुक विज्ञानीजनों द्वारा विविध परिप्रेक्ष्य में प्रायः 32 शोधपत्रों के माध्यम से जैन/(भारतीय) तथ्यों को आधुनिक विज्ञान से परे व पुरोगामी (Forword the date) सिद्ध किया गया।

इस संगोष्ठी का सबसे प्रमुख अद्वितीय वैशिष्ट्य एवं आकर्षण आचार्यश्री द्वारा प्रतिभागियों से किये जाने वाले प्रश्न-उत्तर ने उपस्थित विज्ञानीजनों व श्रोताओं को अत्यंत प्रभावित व उल्लसित किया, इसका कारण यह है कि आचार्यश्री प्राचीन ज्ञान-विज्ञान से लेकर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का जो आगम-विज्ञान-अनुभव-तर्क आदि बहुआयामी बहुविषयक पद्धति से रहस्यात्मक ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म व्यापक विषयों का समाधान सहज-सरल-समन्वय युक्त अपूर्वार्थी आनंददायी पद्धति से प्रस्तुत करते हुए उल्लास व नवचैतन्य का संचार करने वाले सक्षम समर्थ गुरु को पाकर सभी जनों ने अत्यंत गौरव युक्त समाधान प्राप्त किया, जो कि देश-विदेश की किसी भी सभा-समिति-संसद-परिषद्-संगोष्ठी-विश्वविद्यालयों से लेकर विश्व धर्म संसद में भी प्राप्त होना अति दर्लभ है।

''घर की मुर्गी दाल बराबर'' वाली उक्ति के अनुसार अपने गौरव व स्वाभिमान को भुला दिया है जिसके परिणाम स्वरूप हम अपनी जड़ों से कटे हुए वृक्ष की भाँति निस्तेज होकर जी रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानंद, हरगोविन्द खुराना आदि के उदाहरणों से बताया कि हमने अपनी देश की स्थानीय प्रतिभाओं का सम्यक् मूल्यांकन नहीं किया। उक्त समस्याओं के समाधान हेतु गुरुदेव ने अपनी भारतीय संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान के कुछ प्रेरणास्पद श्लोक आदि उद्धरित कर अपने प्राचीन गौरव से परिचित कराया। जैसे-''असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमयः-मृत्युर्मा अमृतं गमय।'' शिक्षा के परम उद्देश्य को बताने हेतु कहा कि-''सा विद्या या विमुक्तये'', ''अथातो तत्त्व जिज्ञासा'' धर्म का उद्देश्य बताया-''यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः'' आदि। गुरुदेव ने कहा कि हम जितना ज्ञान में अवगाहन करेंगे उतना ही हमें अपनी जड़ता व अज्ञानता का बोध प्राप्त होगा।

**यद्-यद् आचरित पूर्व तत्-तत् अज्ञान चेष्टितम्।**
**उत्तरोत्तर विज्ञानात् योगिनः प्रतिभासते।।**

दिनांक 09.11.2014 को उद्घाटन सत्र में ध्वजारोहण, दीप प्रज्ज्वलन व मंगलाचरण के अनन्तर आचार्यश्री सृजित ग्रंथ द्वय-1. ''विश्व द्रव्य विज्ञान'', 2. ''स्वतंत्रता के सूत्र'' का विमोचन हुआ। कोटा यूनिवर्सिटी के पूर्व कुलपति डॉ. एम.एल. कालरा व डॉ. प्रेम सुमन जैन के उद्बोधन के पश्चात् आचार्यश्री ने साधु का ज्ञान व साधु का उद्देश्य के माध्यम से अपना मनोगत व्यक्त किया। आचार्यश्री की शिष्या कुमारी प्रियंका शाह, एम.टेक. द्वारा गीत नृत्य की सुंदर प्रस्तुति दी गई। संगोष्ठी का परिचय **डॉ. एन.एल. कछारा** द्वारा दिया गया। डॉ. कछारा ने कहा कि गौरवशाली ज्ञानी-विज्ञानी महान् आचार्यों की परंपरा में आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव वर्तमान के वैश्विक परिवेश में प्रगतिशील आध्यात्मिक संत हैं। सागवाड़ा में 1997 की संगोष्ठी के बाद 1998 में सलूम्बर की संगोष्ठी में मैं आचार्यश्री से जुड़ा, तब से आज तक उनके मार्गदर्शन व प्रबोधन से यह 13वीं संगोष्ठी भी करवाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ

गुणों से आकर्षित होकर मुझे भी लेखन व अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त हुई एवं आपके आशीर्वाद व मार्गदर्शन से मैंने भी जैन धर्म-दर्शन-विज्ञान की प्रभावना देश-विदेश में की है। जैन धर्म एक वैज्ञानिक धर्म तथा समस्त व्याख्या तत्त्वों एवं तथ्यों पर आधारित है, जिसमें किसी अन्य शक्ति का हस्तक्षेप नहीं है। यह धर्म केवलज्ञानी द्वारा प्रणीत व प्रामाणिक है जिसमें आत्मकल्याण का विशेष महत्त्व है, आत्मज्ञान का भंडार है। सृष्टि की व्याख्या के बिन आत्मज्ञान अधूरा है।

आधुनिक विज्ञान का विकास 300-400 वर्षों में हुआ है, जिसका आधार मात्र मति-श्रुतज्ञान है जो कि अप्रामाणिक किन्तु व्यावहारिक जीवन में उपयोगी है। विज्ञान जैन दर्शन और आत्मज्ञान को समझने में सहायक है। जैन दर्शन और विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन समय की आवश्यकता है। पदार्थ से भी परे अनेक सत्य उजागर करना जैन-दर्शन की विज्ञान को अमूल्य देन है, केवल पदार्थ का अध्ययन संपूर्ण सत्य को उजागर नहीं कर सकता। जैन दर्शन परम सत्य को प्रकट करता है, विज्ञान आंशिक व्यावहारिक सत्य को। जैन दर्शन एवं विज्ञान का समन्वय व सहयोग मानव हितकारी है, इसी उद्देश्य के प्रति आचार्यश्री का जीवन समर्पित है। इस संगोष्ठी का उद्देश्य-जैन सिद्धांतों और ज्ञान-विज्ञान के अन्य सिद्धांतों को प्रस्तुत करना तथा उनकी उपयोगिता का मूल्यांकन करना है। आमंत्रित विद्वान् अपने-अपने मत प्रस्तुत करेंगे और इन पर विचार मंथन करेंगे।

इसके पश्चात् आचार्यश्री के आध्यात्मिक रूचि सम्पन्न भौतिक विज्ञानी शिष्य **डॉ. पारसमल जी अग्रवाल** ने क्वांटम फिजिक्स एवं मैकेनिक जैन सूक्ष्म विषयों की चर्चा करते हुए कहा कि मैंने विज्ञान की पाठशाला में वात्सल्य व शांति शब्द नहीं पढ़ा। मुझे आध्यात्म ही आकर्षित करता है जहाँ आत्मा व भौतिक का भेद-विज्ञान है। जैन धर्म एक वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक धर्म है जिसमें सुपर पॉवर किसी को नहीं माना है। जैन धर्म का अत्यंत सूक्ष्म विषय कर्म सिद्धांत का संदेश विज्ञान करके दिखा रहा है। डॉ. अग्रवाल ने जैन धर्म के कुछ अमूल्य पुष्प बताये जैसे-आसमान का कोई सितारा

प्रकार धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत के संस्थापक सदस्य डॉ. सुशीलचंद्र जैन ने भी अपनी पीएच.डी. व आगामी योजनाओं की जानकारी दी। इन दोनों शोधार्थियों के शोध-प्रबंध व 'भावसंग्रह' का प्रकाशन भी आचार्यश्री की कृति ''ज्वलंत समस्याओं का शीतल समाधान'' सहित प्रकाशन कर रहे हैं।

उद्घाटन सत्र के ''की नोट स्पीकर'' **कोटा विश्वविद्यालय के एक्स-वाइस चांसलर प्रो. एम.एल. कालरा** ने अपनी विनम्रता का परिचय देते हुए कहा कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान के संबंध में मैं अल्पज्ञ हूँ। आपने कहा कि 700 वर्ष पहले कैथोलिक चर्च ने वैज्ञानिक गैलीलियो को प्रताड़ित किया था, कारण विज्ञान के विकास ने वहाँ के धर्म की चूलें हिला दी थी जबकि भारत में धर्म व विज्ञान का कोई झगड़ा नहीं है। स्वाध्याय में विज्ञान दृष्टि से अतुल ज्ञान-विज्ञान समाहित है। आपने बड़े गौरव से कहा कि आधुनिक विज्ञान जैन सिद्धांतों के नजदीक आता जा रहा है। कणाद डाल्टन आदि समस्त अणु विज्ञानियों से भी सूक्ष्म व व्यापक जैन धर्म का परमाणु सिद्धांत है। आगे कहा कि आधुनिक विज्ञान के क्वांटम सिद्धांत जो कि हाइजनबर्ग की खोज है यह भी गूढ़ रहस्यमय है। आपने वैज्ञानिकों की विनम्रता का उल्लेख करते हुए कहा कि वे भी अब भारतीय ज्ञान-विज्ञान को मान्यता प्रदान कर रहे हैं जिसे आइंस्टाइन भी मानते थे। पश्चिम में चेतना पर अब व्यापक अनुसंधान होता जा रहा है एवं वे भी मानने लगे हैं कि हम मूलतः आत्मा हैं।

माध्याह्निक सत्र में युवा शोधार्थी डॉ. पुलक गोयल, जयपुर ने ''भगवती आराधना में शारीरिक संरचना का वैज्ञानिक आधार'' विषय पर अपना शोधपत्र पढ़ा। डॉ. गोयल से आचार्यश्री ने प्रश्न किया कि What is the definition of Mind and Brain? डॉ. तातेड़ ने इस विषय में अपने विचार रखते हुए कहा कि माइण्ड-बॉडी-सोल पर सारा योग आधारित है। आपने माइण्ड (मन) को सॉफ्टवेयर एवं ब्रेन (मस्तिष्क) को हार्डवेयर बताया। आचार्यश्री ने स्वयं इसका लॉजिकल उत्तर दिया

पर अपना समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा कि गलत को गलत मानते हुए भी अक्षमा भाव नहीं रखना ही उत्तम क्षमा है। आचार्यश्री ने जैन दर्शन आधारित सर्व मनोविज्ञान को आधुनिक मनोविज्ञान से परे बताते हुए कहा कि फ्रायड-ह्यूम तक किसी को भी मन का पूर्ण ज्ञान नहीं है। गुरुदेव ने नोकर्म व नोकषाय के अंतर का भी बोध दिया।

उपरोक्त प्रस्तुति अनन्तर के प्रतिभागी विद्वान् डॉ. पारसमल अग्रवाल जिनका महत्त्वपूर्ण विषय था-''आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों से परे आत्म-विज्ञान एवं जैन दर्शन के तीन अनमोल रत्न।'' आपने सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र को जैन दर्शन के तीन रत्न बताया। आध्यात्म में आत्मा-कर्म आदि की स्वीकृति बताते हुए कहा कि रागादि का वर्जन ही सम्यक् चारित्र है। अत्यंत अभिभूत होते हुए आपने कहा कि मुझे आचार्यश्री की अत्यंत महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक कविता ''मैं'' (अहम्) से अद्भूत साहस मिला है। आगे कहा कि जिस कुर्सी में कोई आपदा नहीं हो वह शाश्वत है जिसका स्थायी भाव अपने रस से परिपूर्ण है जो अद्भूत है। तीन लोक तीन काल में सम्यक्त्व से श्रेयस्कर कुछ भी नहीं है।

आगे की प्रतिभागी डॉ. कल्पना जैन, दिल्ली ने अपना शोधपत्र वाचन किया, जिसका विषय ''कर्म की आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक महत्ता'' था। आपने रहस्यवाद को मौलिक स्वभाव का स्वरूप बताया एवं कर्म की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला। आचार्यश्री ने डॉ. कल्पना से प्रश्न पूछा कि सुख-दुःख मूर्तिक कैसे हैं? एवं कायोत्सर्ग से शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग कैसे दूर होते हैं? चीतरी से पधारे जिज्ञासु मणिभद्र का प्रश्न था कि बाल्यावस्था में विकृति नहीं होती, आगे वय बढ़ने के साथ क्यों बढ़ती है? उपरोक्त दोनों ही प्रश्नों का उत्तर आचार्यश्री ने ही देते हुए कहा कि वस्तुतः सांसारिक सुख-दुःख भौतिक हैं कारण भौतिक तत्त्व भौतिक तत्त्व को प्रभावित करते हैं। सुख-दुःख घाति कर्म के कारण होते हैं जो कि पुद्गल (भौतिक) हैं।

इसके पश्चात् डॉ. आई.एल. जैन, उदयपुर ने ''आध्यात्म एवं रोगोपचार'' विषय पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया।

दोष-गुणन को कैसे तजिये गहिये'' "The Philosophy and Science start from question." ''सा विद्या या विमुक्तये'' आदि वाक्यों से प्रेरित करते हुए कहा कि हम स्व-शक्ति को भुला चुके हैं। आध्यात्म परम विद्या है। मोक्ष प्राप्ति हेतु जड़ का भी ज्ञान चाहिए, इस संदर्भ में आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक ''फ्रित्जॉफ काप्रा'' को गुरुदेव ने सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक बताया जिन्होंने आधुनिक भौतिकी और प्राच्य रहस्यवाद के मध्य समान्तरताओं का अन्वेषण करके समन्वयात्मक क्रांति की है। गुरुदेव ने कहा हमें अपनी स्वयं की अनंत शक्ति व ऊर्जा का ज्ञान-भान नहीं है। ''गाँव का जोगी जोगन्ना, आनगाँव का सिद्ध'' की हमारी मानसिकता को सुधार करने की नितांत आवश्यकता है। आचार्य देव ने कहा कि केवल एक आध्यात्मिक आगम ग्रंथ ''प्रवचनसार'' में जितना ज्ञान-विज्ञान है उतना हजारों दार्शनिक एवं वैज्ञानिकों में भी नहीं है। यह संगोष्ठी आपको उत्तेजित करने, कमी दूर करने व प्रोत्साहित करने हेतु की गई है। हमें गुणग्राही बनना है, अंधविश्वासी नहीं। मेरी पीड़ा व अनुभव है कि शिक्षा-कानून-संविधान-विज्ञान आदि को अंधे बनकर नहीं स्वीकारना है। यह सब मैं गुरु की भूमिका में बोल रहा हूँ। कहा भी है कि-

**गुरु कुम्भार घट शिष्य है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।**
**अन्दर हाथ पसार के, बाहर मारे चोट।।**

हमारे यहाँ 8 वर्ष अंतर्मुहूर्त का बालक विश्वगुरु बनता है। हमारे देश में बालक नचिकेता यमराज से भी आध्यात्मिक ज्ञानार्जन किये हैं। हम अमृतपुत्र हैं। हमें सर्व बंधनों को तोड़ देना चाहिए। मैंने जिनवाणी माता का दूध पिया है, आप लोगों को भी पान करना चाहिए। मैं प्रोफेसर वैज्ञानिकों को इसीलिये पढ़ाता हूँ क्योंकि वे विनम्र जिज्ञासु, सत्यग्राही व खुले दिमाग वाले होते हैं। आप सभी ज्ञानपिपासु बनो व फेम-नेम-गेम से बंधो मत। सत्य को जानने-मानने-स्वीकार करने की क्षमता विकसित करो यह मेरा आह्वान व आशीर्वाद आप सबके लिए है। हर कार्य स्वेच्छा से करने से सातिशय पुण्य बढ़ेगा, साथ ही I.Q., E.Q., S.Q. बढ़ेगा। अंत में कहा कि-हर

इसके पश्चात् के प्रतिभागी डॉ. सुमत जैन, जयपुर ने ''पूजा-ग्रंथों में वर्णित पूजा प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन'' विषय पर अपने विचार रखे। तत्पश्चात् तातेड़ जी ने कहा कि पूजा शब्द से विनय का बोध होता है। आचार्यश्री ने कहा कि ''परस्परोपग्रहो-जीवानाम्'' ही नहीं है अपितु द्रव्याणाम्-गुणानाम् भी है, यह ही ECO-SYSTEM या पर्यावरण सुरक्षा के महान् सूत्र हैं।

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय के प्रो. जिनेन्द्र कुमार जैन, उदयपुर ने ''जैन परंपरा में आत्मा की आयतनिक स्थितिः एक विश्लेषण'' विषय पर बोले। आचार्यश्री ने इस विषय को आगम व आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में हाइजनबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धांत व क्वांटम सिद्धांत, गति सिद्धांत के अनुसार तुलनात्मक दृष्टि से बताया।

संगोष्ठी का द्वितीय दिवस यानी दिनांक 10.11.2014 के प्रातः के चौथे सत्र में डॉ. पी.एम. अग्रवाल चेयरमैन थे व कन्वीनर डॉ. गोदावत थे। सत्र में प्रथम शोधपत्र डॉ. सोहनराज तातेड़ जी ने प्रस्तुत किया, जिसका विषय था-Role of Yoga and Naturopathy in the Development of an Ideal Life Style. जैन दर्शन महान् क्यों है? इसके विषय में बोलते हुए कहा कि आत्मा शरीर व्यापी है जिस पर 8 कर्मों के पर्दे पड़े हैं, ये पर्दे हटने पर आत्मा का विराट रूप प्रगट होता है, जिसमें परम सत्ता विराजित है। जैन दर्शन आत्म-आचार केन्द्रित है जो जैन धर्म की धूरी है। जैन दर्शन कर्मवाद में विश्वास करता है, कर्म निरंकुश सत्ता नहीं है, उसे बदला जा सकता है, जैन धर्म की शिक्षाएँ मूल्य परक हैं। त्रिपदी का सिद्धांत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है, आध्यात्म इंस्टूयशन पॉवर है। जैन धर्म की वैज्ञानिकता को पढ़ना-पढ़ाना युग की परम आवश्यकता है। इस प्रसंग पर आचार्यश्री ने प्रश्न करते हुए कहा कि एक समय में कोई जीव कैसे तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्यायों को जान लेता है? उपस्थित कोई भी शोधार्थी-वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर न देने पर आचार्यश्री ने स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि आत्मा का ज्ञान गुण स्वाभाविक है जो कि अनंत व शुद्ध ज्ञान

वैशिष्ट्य'' विषयक शोधपत्र प्रस्तुत हुआ। श्री जैन ने बताया कि इसमें मैंने इस विषय के शोध हेतु ज्ञानार्णव ग्रंथ व आचार्यश्री कनकनन्दी जी सृजित कृति ''ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण'' आदि साहित्य का अध्ययन किया है। जैन ध्यान पद्धति आध्यात्मिक जागरण के लिए है।

डॉ. आर.एस. शाह, पुणे द्वारा Begining of Algebraic Symbolism in Ancient and Medieval India विषय के माध्यम से जैन अलौकिक गणित का विश्लेषण अत्यंत सराहनीय रहा। इस विषय को सुनकर आचार्यश्री ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि मेरे प्रिय व रूचिकर विषयों में से एक विषय अलौकिक गणित है।

**डॉ. सुरेन्द्र पोखरना जो कि इसरो के वैज्ञानिक है**, अहमदाबाद में कार्यरत है, आपने "Limitation of Scientific and the Concept of Knowledge through consciousness in Jain Philosophy" विषय के माध्यम से जैन/(भारतीय) सिद्धांत व तथ्यों को परम विज्ञान सिद्ध करते हुए आधुनिक विज्ञान से परे व पुरोगामी बताते हुए जैन विज्ञान के प्रति अपना गौरव युक्त अहोभाव अभिव्यक्त किया। पोखरना जी के विचारों से प्रभावित आचार्यश्री ने कहा कि भारतीय प्रतिभा अभी तक पिछलग्गू रही है, किन्तु विज्ञान समिति में वैज्ञानिक दौलत सिंह कोठारी जी की स्मृति में आयोजित वैज्ञानिक संगोष्ठी व इस 13वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी से मेरी दीर्घकालिक भावना व लक्ष्य को मूर्त रूप प्राप्त हुआ है जिससे मैं अभिभूत हूँ। ऐसा ही सत्साहस आप सब में जागृत हो ऐसा मेरा आशीर्वाद व शुभकामनाएँ हैं।

इसके पश्चात् माध्याह्निक सत्र में चेयरमैन डॉ. पोखरना जी रहे, डॉ. गोदावत कन्वर्नर रहे। जबलपुर से आगन्तुक शोधपत्र वाचक डॉ. एल.सी. जैन ने ''जैन योग : मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ विज्ञान'' पर अपने विचार रखे। कुछ प्रश्न आचार्यश्री ने किये किन्तु डॉ. जैन ने कहा कि गुरुदेव इस विषय में आप ही समाधान प्रस्तुत करें। आचार्यश्री ने कहा कि पिनियल ग्लैण्ड के एक्टिव होने से मतिज्ञान-श्रुतज्ञान होने में सहायक हो सकता है। मन क्षायोपशमिक भाव है, अतीन्द्रिय ज्ञान मनातीत होने पर

आचार्यश्री के समयानुबद्ध शिष्य **कृषि वैज्ञानिक डॉ. एस.एल. गादावत**, उदयपुर ने "Classification of Living Organism in view of Jainism and A brief comparision with Biological Science" विषय पर आधुनिक विज्ञान व जैन आगम के परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रभावी शोध प्रस्तुति दी।

डॉ. सीमा जैन, उदयपुर जो कि सुखाड़िया विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग से प्रथम ही आचार्यश्री की संगोष्ठी में प्रतिभागी बनी। आपने ''संवेग का आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण'' विषय पर अपनी प्रभावी व सुंदर प्रस्तुति दी।

रात्रिकालीन सत्र में चेयरमैन एल.सी. जैन, जबलपुर व कन्वर्नर डॉ. प्रभात कुमार जैन रहे। सर्वप्रथम आचार्यश्री ने अपना अभिप्रेरक संबोधन प्रदान करते हुए कहा कि मेरा अभिप्राय व मेरे लक्ष्य व भावना के अनुरूप शोधपत्र प्रस्तुत हुए हैं। गणित का व पोखरना जी का पत्र भी बहुत प्रभावी रहा जिससे मेरा खून व शक्ति बढ़ गई। आपके द्वारा संकीर्णता व बंधनों को तोड़ने का जो निर्मम प्रयास हो रहा है वह अत्यंत सराहनीय है। आपने कहा ''तत्त्वमेसीश्वेतकेतु'' विदेशी वैज्ञानिक भी सत्साहस पूर्वक अपने पूर्व के वैज्ञानिकों को चुनौती देते हुए आगे बढ़ रहे हैं। आप में उत्साह व ऊर्जा देखकर मुझे आनंद हो रहा है। हमारे देश में गुलाम कानून व मैकाले की शिक्षा पद्धति व भानुमति का कुनबा स्वरूप संविधान चल रहा है। इन सबसे ऊपर उठकर मौलिक नवाचार करते हुए आगे बढ़ना है। सत्य, एटम व आत्मा को कौन काट सकता है। मेरा स्वप्न-शकुन-अंगस्फुरण आदि अवश्य फलीभूत होगा। हमें सत्य-समता व शांति में रहते हुए कार्य करना है। मैं Up to date नहीं वरन् Forword the date हूँ। हम दिशाम्बर हैं, हमें सत्य के बल पर आगे बढ़ना है। आत्मा व सत्य को कोई भी परास्त नहीं कर सकता है।

इस अवसर पर डॉ. एल.सी. जैन व प्रो. प्रभात ने भी अपना मूल्यवान् मन्तव्य रखा। चीतरी से पधारे युवा मणिभद्र जैन ने भी अपना अनुभव सुनाते हुए कहा कि आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव की इन वैज्ञानिक संगोष्ठियों की गुणवत्ता व

उदयपुर की श्रीमती सुलेखा मांगरी ने ''उत्तराध्ययन सूत्र में पर्यावरणीय चिन्तन एवं उसके संरक्षण के सूत्र'' विषय पर प्रकाश डाला। ''महावीर का अहिंसा चिन्तन एवं विज्ञान'' इस विषय का प्रस्तुतिकरण उदयपुर की प्रतिभागी श्रीमती सुधा भण्डारी ने किया।

दिनांक 11.11.2014 को जैन विश्व भारती लाडनूँ विश्वविद्यालय के पूर्व **कुलपति व संस्थापक डॉ. एम.आर. गेलडा** ने अपने अध्यक्षीय आसन से उपस्थित शोधार्थी व श्रोताओं के मध्य में आचार्यश्री के व्यक्तित्व-कृतित्व के प्रति अपना विनय युक्त अहोभाव प्रकट किया। कन्वीनर डॉ. गोदावत थे। इस प्रसंग पर आचार्यश्री ने बताया कि मैंने सर्वप्रथम श्री गेलरा जी के लेख एवं साहित्य से प्रभावित होकर अब तक ज्ञानधारा की प्रायः 22 पुस्तकें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे जैन/(भारतीय) तथ्यों पर लिखी हैं। डॉ. गेलरा ने अपनी स्वरचित पुस्तकें भी आचार्यश्री को प्रदान कीं। सत्र का प्रथम शोधपत्र डॉ. प्रभात कुमार जैन, गाजियाबाद ने अपनी प्रभावशाली व्याख्यान पद्धति से वाचन किया जिसका विषय ''पुद्गल के सूक्ष्म विषय व रंगों के प्रभाव'' था। डॉ. आर.एल. जैन, उदयपुर ने "Lord Mahaveer and Indian Polity" विषय पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् गुरुदेव ने भारतीय कानून व व्यवस्थाओं से संबंधित कुछ प्रश्न पूछे।

**बी.एन. कॉलेज के पूर्व मैनेजिंग डायरेक्टर, अंतर्राष्ट्रीय ज्योतिष विज्ञानी, आचार्यश्री के प्रिय शिष्य 'मनोहरसिंह जी कृष्णावत' ने अपनी चिर-परिचित शैली से अत्यंत विनम्रता का परिचय देते हुए कहा कि-आज मुझे ऐसा अनुभव आ रहा है कि आचार्यश्री वैज्ञानिक विद्वानों के ही नहीं मुझ जैसे मूर्ख प्राणी के भी गुरु हैं। आपकी सरलता, निर्मलता व प्रेम भाव से मैं अभिभूत हूँ। आचार्यश्री ने मुझे मन की शुद्धि के उपाय बताये हैं। पूर्व में गुरुदेव ने मुझे भी अपनी अंतरंग वेदना व आनंद अभिव्यक्त किये हैं। आत्मा को मोक्ष ले जाने हेतु गुरुदेव श्री जनरेटर-वायरलैस हैं। आपके गुण**

**है। कृष्णावत जी के विचार व भाव को सुनकर उपस्थित जन अत्यंत अभिभूत व प्रसन्न हुए। इसके बाद श्रीमती ममता जैन व डॉ. ज्योति बाबू जैन ने भी अपना शोध वाचन किया।**

आचार्यश्री सेवाभावी तत्पर युवा शिष्य मुकेश जैन, गायरियावास ने अपनी महती भावना प्रगट करते हुए कहा कि आचार्यश्री मेरी दृष्टि में वर्तमान परिवेश के सबसे बड़े महाज्ञनी वैज्ञानिक संत हैं, इसीलिये आपके द्वारा सृजित सर्वोदयी साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद होकर देश-विदेश में प्रसारण होना समसामयिक आवश्यकता है।

मध्याह्न के समापन सत्र में मुख्य अतिथि डॉ. एम.आर. गेलरा, डॉ. के.एल. कोठारी चेयरमैन, डॉ. एन.एल. कछारा प्रमुख थे। कन्वीनर डॉ. प्रभात कुमार जैन थे। डॉ. गोदावत ने संगोष्ठी की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए बताया कि प्रायः 32 शोधार्थियों ने अपने-अपने विषयों पर अच्छी प्रस्तुति दी है। मणिभद्र, दीपेश के विचार व भाव भी गोदावत जी ने बताये। डॉ. के.एल. कोठारी ने जैन दर्शन पर अपनी कविता प्रस्तुत की व कहा कि-आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव गद्य व पद्य दोनों ही विधाओं को समर्पित है। डॉ. देव कोठारी जी ने आचार्यश्री की साहित्यिक उपलब्धियों को अति प्रेरणास्पद बताते हुए संगोष्ठी आयोजकों की सुमधुर भोजन व्यवस्था की प्रशंसा की। डॉ. सुशीलचंद्र जैन ने संगोष्ठी की स्मारिका बनाने का सुझाव दिया। जो कि धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान, बड़ौत के संस्थापक सदस्य हैं। डॉ. एन.एल. कछारा ने कहा कि आचार्यश्री ने अनेक बार अपनी पीड़ा व्यक्त की है कि हम विश्वगुरु थे। आपने साहित्य सृजन के माध्यम से भी यह सिद्ध कर दिखाया है। जैन विश्व भारती लाडनूँ ने भी ऐसा ही उद्देश्य आगे बढ़ाया है। हमें लेखन, संगोष्ठी, वेबसाइट आदि के माध्यम से वैश्विक दार्शनिक व वैज्ञानिकों तक हमारा संदेश भिजवाना है। एम.एस. कृष्णावत ने भी णमोकार मंत्र के प्रयोग से विश्वव्यापी प्रदूषण दूर करने का मार्गदर्शन आचार्यश्री से प्राप्त करने का विचार रखा।

डॉ. एम.एल. गेलरा जी ने अपनी पीड़ा व प्रसन्नता दोनों की अभिव्यक्ति करते

संगोष्ठी के समापन के अवसर पर आचार्यश्री ने अपनी आह्वानि व प्रबोधन वाली शैली में उपस्थित विज्ञानी जनों को संबोधित करते हुए कहा कि हमें आत्म सत्य का परिज्ञान होना चाहिए, शाश्वत् तत्त्व अकृत्रिम है। सत्य जानने पर स्व का विकास करते हुए स्वयं को पवित्र बनाने हेतु ही हम धर्म करते हैं। मित्रता-प्रेम-सहयोग-संगठन-शांति यह सब Eco System है। भारतीय प्रतिभा से संपूर्ण विश्व चमत्कृत था। आध्यात्म विद्या से भारत विश्वगुरु रहा। आत्मा का स्वभाव ''तमसोमा ज्योतिर्गमय'' रूप है, आध्यात्मिक ज्योति परम ज्योति है। हम सब अमृत स्वरूप है, हम वैभवशाली द्रव्य तत्त्व हैं, द्रव्यों में उत्तम द्रव्य, धर्म में उत्तम धर्म, तीर्थों में उत्तम तीर्थ हम ही हैं। विज्ञान शव को बता सकता है, शिव को नहीं। आध्यात्मिक सत्य अमूर्त विज्ञान है। आचार्यश्री ने कहा कि इस संगोष्ठी से मेरा उत्साह करोड़ों गुणा बढ़ गया है। सत्य जहाँ से भी मिले, ग्रहण करना चाहिए। गुरुदेव ने इस संगोष्ठी को सफलतम बताते हुए सभी वैज्ञानिक शोधार्थियों व श्रोताओं को आशीर्वाद व स्वरचित साहित्य-प्रशस्ति-पत्र, पुरुस्कार आदि प्रदान करते हुए स्वप्रकाशी व विश्वप्रकाशी बनने हेतु सनम्र सत्यग्राही बनने का नियम प्रदान किया एवं सभी को हाथ उठाकर प्रतिज्ञाबद्ध कराते हुए आशीर्वाद दिया।

आचार्यश्री ने उपस्थित शोधार्थियों को संबोधित करते हुए यह भी कहा कि संविधान, राजनीति, कानून, सामाजिक व्यवस्था आदि का तो चींटी व दीमक आदि को भी ज्ञान है। अतः आध्यात्मिक ज्ञान बिना इन सबके ज्ञान से कोई महान् नहीं बन सकता है।

## वैज्ञानिक धर्माचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के साहित्य का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर वैश्विक स्तर पर प्रकाशन हेतु आवेदन

आपने "The Jack of all master of none" इस कहावत को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। आपके द्वारा विश्व के लगभग सभी विषयों पर अध्ययन, अध्यापन व शोध किया जा रहा है जो कि वर्तमान समय में अद्वितीय उदाहरण है। गुरुदेव पूर्ण रूप से 14 भाषा के व कुल 30 भाषा के ज्ञाता है। आपके आलेख व शोधपत्र 100 से 150 विभिन्न धार्मिक पत्र-पत्रिकाओं व शोध-पुस्तकों में प्रतिमाह प्रकाशित होते हैं। लेकिन कुछ पत्रिकाओं में लेख भेजने से यह भी ज्ञात हुआ कि इस लेख को नहीं छापते हैं। यह उन संपादकों का दुर्भाग्य है कि वे गुरुदेव के ज्ञान व विषय को नहीं समझते हैं।

गुरुदेव का साहित्य U.G.C. द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसी क्रम में वर्तमान में लाडनूँ विश्वविद्यालय द्वारा गुरुदेव के साहित्य पर Ph.D. करने पर प्रथम व द्वितीय वर्ष 19000/- रु. प्रतिमाह व तृतीय वर्ष 25000/- रु. प्रतिमाह स्कॉलरशीप दी जा रही है। एक और हर्ष की बात है कि कुछ दिन पूर्व महासभा अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी ने स्वयं सेक्टर-11, उदयपुर आकर गुरुदेव को मुरादाबाद पधारने का निमंत्रण दिया। तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद का संचालन आपके सान्निध्य में करने का अनुरोध किया व इतना ही नहीं आपके द्वारा उस विश्वविद्यालय के माध्यम से शोध-बोध एवं देश-विदेश में प्रचार-प्रसार का काम करने का भाव प्रकट किया।

मैं मेरे मूल विषय को कहना चाहता हूँ कि गुरुदेव का साहित्य एवं शोध कार्य को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करवा करके भारत व विश्व के श्रेष्ठ प्रकाशक से छपवावे ताकि गुरुदेव का साहित्य व शोध अहिन्दी भाषी भारतीयों व अभारतीयों को यूनिवर्सल लेंग्वेज में उपलब्ध हो सके ताकि वे सभी अपना ज्ञान बढ़ा सके साथ ही गुरुदेव के ज्ञान का भी प्रचार-प्रसार हो सकें।

हाल ही में गुरुदेव को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विख्यात भौतिक वैज्ञानिक ''फ्रित्जॉफ काप्रा'' की पुस्तक ''भौतिकी का सतपथ'' प्राप्त हुई। अध्ययन करने पर गुरुदेव को वह पुस्तक बहुत अच्छी व रोचक लगी। इस पुस्तक में लेखक ने जो रहस्य

विज्ञान से अधिक समृद्ध हो जायेगा। वर्तमान में वैज्ञानिक आध्यात्म व जैन धर्म के समीप आ रहे हैं इससे भी उनका कार्य अधिक सरल हो जायेगा। यदि पूर्व में इस योजना से गुरुदेव के साहित्य उन वैज्ञानिकों व शोधार्थियों तक पहुँचते तो क्या वे अधिक लाभान्वित नहीं होते? कहने का भाव यह है कि दुनिया जिनको धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, गणित, आध्यात्म आदि का हीरो मान रही हैं उन्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि हमारे गुरुदेव इन सब विधाओं के ''हीरा'' हैं।

वर्तमान में वैज्ञानिक चैनलों पर विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित शोध कार्य दिखाये जाते हैं उससे गुरुदेव सहित विश्व के सभी लोग लाभान्वित हो रहे हैं। अगर हम सभी शिष्य व भक्त मिलकर प्रयास कर गुरुदेव के ज्ञान व शोध के विभिन्न विषयों पर डॉक्यूमेंट्री बनाकर वैज्ञानिक चैनलों से प्रसारित करावे तो देव-शास्त्र-गुरु की वर्तमान में महान् अद्वितीय प्रभावना कर सकते हैं। हमारा यह प्रयास धर्म-दर्शन-विज्ञान के लिए महान् उपकारी सिद्ध हो सकता है।

अगर हम यह कार्य समय पर नहीं प्रारंभ करेंगे तो गुरु के इस ज्ञान एवं शोध से वर्तमान व भविष्य के कई प्रज्ञावान् जिज्ञासु लोग वंचित रह जायेंगे व हमारी देरी से हो सकता है कि वे इस ज्ञान व शोध के परिचय से पूर्व ही दुनिया से चले जाये और उनके ज्ञान व शोध को पूर्णता प्राप्त न हो या देरी हो जाय। ऐसे में कहीं ना कहीं हम इनके व भावी पीढ़ी के दोषी होंगे। अब वक्त आ गया है कि जैन धर्म को सीमित दायरे से बाहर निकालकर सशक्त मीडिया से जोड़कर धर्म प्रभावना की जाय।

गुरुदेव द्वारा आयोजित इन संगोष्ठियों का वीडियो रिकॉर्डिंग भी होनी चाहिए व इस 13वीं संगोष्ठी में एक दिन के किये गये प्रयास इंटरनेट पर ''लाइव ब्रोडकास्ट'' को पूर्व नियोजित किया जाना चाहिए ताकि जो वैज्ञानिक शोधार्थी व जिज्ञासु यहाँ नहीं पहुँच सके वे भी लाभान्वित हो सकें।

गुरुदेव द्वारा रचित जो साहित्य उपलब्ध है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है उसे श्रद्धा से पढ़ना चाहिए। इससे हमारा ज्ञान बढ़ेगा। गुरुदेव द्वारा रचित साहित्य पढ़ने व

हमें उपकृत किया है व निरंतर कर रहे हैं। अब हमारी बारी है कि हम इन कार्यों को शुरू कर गुरु के ऋण में से कुछ अंश मात्र चुकाये। हम यह कार्य करके गुरु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर सकते हैं। यह हमारी असली गुरु दक्षिणा होगी।

गुरुदेव महाव्रती हैं व संसार के सभी वैभव छोड़कर वैराग्य धारण किया है। गुरुदेव ने 25-30 वर्ष पूर्व स्वयं व संघ में सभी साधु को याचना करने का त्याग करा दिया है अयाचक वृत्ति के धारी हैं। वे किसी को कोई कार्य करने के लिए नहीं कहते है न ही कहेंगे। लेकिन यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम बिना कहे स्वयं प्रेरणा से इस महायज्ञ का शुभारंभ करें। सभी भक्त व शिष्य इस कार्य की अनुमोदना कर समर्थन करे व अपनी प्रज्ञा, सम्पर्क का, प्रयोग कर कार्य को मूर्त रूप देवें। अंत में गुरु के संबंध में यह बात कहना चाहता हूँ कि लोग गंगा में नहाने जाते हैं लेकिन गंगा घर पर आने पर क्यों नहीं नहाते।

धन्यवाद! जय जिनेन्द्र!

**मुकेश जैन, उदयपुर, मो. 9414759214**

## विदेशी शोधार्थियों के लिए आचार्यश्री का संबोधन!

# भारतीय फिलॉसफी आत्मा पर केन्द्रित व प्राचीन है!

वैश्विक दृष्टि सम्पन्न वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के माध्याह्निक ज्ञान-विज्ञान कार्यशाला में अमेरिका से शोधार्थी-जिज्ञासु बनकर 8-10 प्रोफेसर आदि पधारे व दिगम्बर श्रमण साधुओं के दर्शन कर हर्षित हुए। आचार्यश्री ने उन सभी को अंग्रेजी के माध्यम से भारतीय दर्शन की विशेषताओं से अवगत कराते हुए कहा कि भारत में जैन-बौद्ध व हिन्दू आदि दर्शनों का मूल ध्येय आत्मा को विशुद्ध करते हुए परमात्मा बनाना है। आचार्यश्री के कृषि वैज्ञानिक शिष्य डॉ. एस.एल. गोदावत ने उन विदेशी जिज्ञासुओं को दिगम्बर जैन साधुओं के ज्ञान व तप साधना आदि से परिचित कराया। इस प्रसंग में आचार्यश्री रचित वैश्विक प्रसारित कविता के माध्यम से गुरुदेव ने भगवान महावीर के आध्यात्मिक-वैज्ञानिक सिद्धांतों से उन्हें संबोधित किया एवं

**मार्गदर्शक-सान्निध्य-शिक्षादातागुरु-आचार्य विमलसागर जी,**
**आचार्य-भरतसागर जी, आचार्य-विद्यानन्द जी (दिल्ली)**

| क्र. | अवस्था | समयावधि | दीक्षा/उपाधि प्रदाता | विशेष विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. | ब्रह्मचर्य के विचार | | - | 14 वर्ष की आयु में स्वेच्छा से स्व-अंत प्रेरणा से आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकारा |
| 2. | ब्रह्मचारी | 1975 | आचार्य कुंथुसागर जी<br>ग.आ. विजयामति माताजी | मंदार गिरी (बिहार) आगम ग्रंथों का अध्ययन |
| 3. | क्षुल्लक | 1978-80 | आचार्य कुंथुसागर जी | अभिक्षण ज्ञानोपयोगी (अतिशय क्षेत्र पपौरा) |
| 4. | मुनि | 5 फरवरी, 81<br>प्रमुख गुरु | आचार्य कुंथुसागर जी<br>ग.आ. विजयामति | श्रवण बेल गोला (कर्णाटक)<br>माताजी शिक्षा प्रदात्री |
| 5. | उपाध्याय | 25 नव., 82 | आचार्य कुंथुसागर जी | हासन (कर्णाटक) |
| 6. | उपाध्याय | 1985 | आचार्य कुंथुसागर जी<br>आचार्य देशभूषण जी | सिद्धांत चक्रवर्ती<br>समनेवाड़ी (कर्णाटक) |
| 7. | एलाचार्य | 1988 | आचार्य कुंथुसागर जी | आरा (बिहार) |
| 8. | एलाचार्य | 1990 | आचार्य कुंथुसागर जी<br>आचार्य आनंदसागर | विश्व धर्म प्रभाकर<br>दिल्ली पंचकल्याणक के अवसर पर |
| 9. | एलाचार्य | 1991 | आचार्य कुंथुसागर जी<br>दि. जैन समाज रोहतक | ज्ञान-विज्ञान दिवाकर<br>रोहतक (हरियाणा) |
| 10. | आचार्य | 22 अप्रैल, 1996 | आचार्य कुंथुसागर जी<br>संस्कार आचार्य अभिनंदन सागर जी | उदयपुर (राज.)<br>आ. पद्मनन्दी जी आदि 60 साधु-साध्वी (सान्निध्य) सकल दि. जैन समाज, उदयपुर |

**प्रमुख संगठन-**

1. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान (बड़ौत)
2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर (राज.)
3. देश-विदेश में शाखाएँ

| | | |
|---|---|---|
| | 1978 | (आ. विमलसागर जी, आ. पुष्पसागर जी ससंघ के साथ) |
| 2. | 1979 | शाहगढ़ (म.प्र.) |
| 3. | 1980 | अकलुज (महाराष्ट्र) (स्वगुरु आ. कुंथुसागर जी ससंघ) |
| 4. | 1981 | श्रवणबेलगोल (कर्णाटक) (प्रायः 200 साधु-साध्वी आदि के साथ) |
| 5. | 1982 | हासन (स्वगुरु के साथ) |
| 6. | 1983 | तुमकुर (स्वगुरु के साथ) |
| 7. | 1984 | बेलगाँव (स्वगुरु के साथ) |
| 8. | 1985 | शेमनेवाड़ी (स्वगुरु के साथ) |
| 9. | 1986 | शेड़वाल (कर्णाटक) (स्वगुरु के साथ प्रायः 25 साधु-साध्वियों के साथ) |
| 10. | 1987 | अकलुज (महाराष्ट्र) |
| 11. | 1988 | आरा (बिहार) (स्वगुरु के साथ प्रायः 35 साधु-साध्वियों के साथ) |
| 12. | 1989 | बड़ौत (उ.प्र.) (स्वगुरु के साथ प्रायः 40 साधु-साध्वियों के साथ) |
| 13. | 1990 | मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) (स्वगुरु के साथ प्रायः 40 साधु-साध्वियों के साथ) |
| 14. | 1991 | रोहतक (हरियाणा) (स्वगुरु के साथ प्रायः 40 साधु-साध्वियों के साथ) |
| 15. | 1992 | निवाई (राजस्थान) (5 साधु-साध्वी सहित स्वतंत्र) |

| | | |
|---|---|---|
| 22. | 1999 | झाड़ौल (स), उदयपुर (राजस्थान) |
| 23. | 2000 | आयड़, उदयपुर (राजस्थान) |
| 24. | 2001 | गींगला, उदयपुर (राजस्थान) |
| 25. | 2002 | प्रतापगढ़ (राजस्थान) |
| 26. | 2003 | मूँगाणा, प्रतापगढ़ (राजस्थान) |
| 27. | 2004 | गनोड़ा, बाँसवाड़ा (राजस्थान) |
| 28. | 2005 | उदयपुर (राजस्थान) |
| 29. | 2006 | सागवाड़ा (15 साधु-साध्वी सहित) |
| 30. | 2007 | सागवाड़ा (कॉलोनी ग.पू.) |
| 31. | 2008 | पाड़वा (डूँगरपुर) |
| 32. | 2009 | रामगढ़ (डूँगरपुर) |
| 33. | 2010 | सीपूर (उदयपुर) |
| 34. | 2011 | सेमारी (उदयपुर) |
| 35. | 2012 | विजयनगर (गुजरात) |
| 36. | 2013 | हल्दीघाटी (राजसमंद) (श्वे. जैन भक्तों द्वारा) |
| 37. | 2014 | सेक्टर-11, उदयपुर (राजस्थान) |

## आगामी 14वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी

### विषय : सत्य-साम्य-सुखामृतम् (वैज्ञानिकाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव कृत प्रवचनसार की समीक्षा) में वर्णित ज्ञान-विज्ञान जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों से परे...

सतत् ज्ञानोपयोगी वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा अब

235 ग्रंथों का सृजन कर देश-विदेश के विश्वविद्यालयों से लेकर विश्व धर्म संसद तक अपने वैश्विक ज्ञान-विज्ञान का प्रसार किया है। देश-विदेश के जिज्ञासु शिक्षार्थी-शोधार्थी वैज्ञानिक-कुलपति-प्राध्यापक-न्यायाधीश-शिक्षाशास्त्री निरंतर लाभान्वित हो रहे हैं।

उपरोक्त संगोष्ठी के सन्दर्भ में आचार्यश्री द्वारा निम्नोक्त विषय चयनित हैं, यथा-(1. परम सत्य (महासत्ता-अवान्तर सत्ता-स्वसत्ता) 2. समता परमो धर्म/परम चारित्र 3. अपरिग्रह अहिंसा एवं पर्यावरण सुरक्षा 4. विश्व व्यवस्था (विश्व-प्रतिविश्व एवं विश्व की कार्य प्रणाली) 5. जीव विज्ञान 6. भौतिक विज्ञान 7. बंध एवं मोक्ष प्रक्रिया 8. कर्म सिद्धांत 9. अणु सिद्धांत 10. ज्ञान मीमांसा (अनेकान्त) 11. प्रत्यक्ष ज्ञान 12. परोक्ष ज्ञान 13. आध्यात्मिक सुख ही परम सुख 14. इन्द्रिय सुख दुःखप्रद 15. आत्मज्ञ ही सर्वज्ञ 16. जो एक को जानता, वह सब को जानता 17. निश्चय एवं व्यवहार काल 18. पुण्य-पाप मीमांसा 19. मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य 20. ज्ञान-चेतना-कर्म चेतना-कर्मफल चेतना 21. अशुभोपयोग-शुभोपयोग-शुद्धोपयोग आदि) उपरोक्त विषयों के शोध-बोध हेतु आचार्यश्री सृजित उपरोक्त ग्रंथ सभी शोधार्थियों के लाभार्थे आधे मूल्य पर व डाक व्यय सहित संस्था के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी सहायता से जैन-जैनेत्तर धर्म-दर्शन-विज्ञान के मनीषी महत्त्वपूर्ण विषयों पर अपने शोध प्रबंधों द्वारा नये-नये अज्ञात सत्य-तथ्यों को विभिन्न दृष्टिकोणों से पारस्परिक मंथन द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं।

**विशेष**-आगामी 14वीं वैज्ञानिक संगोष्ठी की आयोजन तिथि व स्थान का निर्धारण होते ही आपको पूर्व सूचना दे दी जायेगी। ग्रंथ प्राप्ति निम्न पते पर कर सकते हैं।

1. **धर्म-दर्शन सेवा संस्थान द्वारा श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा,**
   चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
   उदयपुर (राज.)-313001, मो.-9783216418

प्यारा लागे छे.....

लाख-लाख दीवड़ा नी आरती उतारू.....2

लाख-लाख तोरण बंधाय, आज थारी आरती उतारू

प्यारा लागे छे.....

देश-विदेश में विहार करीने 2

करयो छे धर्म प्रचार, आज थारी आरती उतारू

प्यारा लागे छे.....

मीठी-मीठी लागे थारी अमृत वाणी

हृदय कली खिले जिसने है सुनी

सुनते ही हो दीदार.....आज थारी.....

प्यारा लागे छे.....

मन्दिर मां घनन-घनन घन्टा वागे छे

झनन-झनन झालर वागे-आज थारी आरती.....

प्यारा लागे छे.....

## श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव की आरती

चन्दा से चान्दनी लायी, सूरज से ज्योति मंगाई

तारों से सजाई तेरी आरती, हो गुरुवर

हम सब उतारे तेरी आरती.....

अष्ट मातृ का पालक गुरुवर, रत्नत्रय के धारी

सुख आनन्द को देने वाले, दुःख समूह के हारी

गुरुवर ज्ञानामृत पिलादो ऋषिवर, ज्ञान के हो भण्डारी

गुरुवर पाके चरणों की छाया, हर सुख जीवन में आया
तारों से सजाई तेरी आरती, हो गुरुवर.....

गाते है जयकार तुम्हारी, जग के सब नर-नारी
सब पर करुणा बरसाते हो, गुरुवर करुणा धारी
गुरुवर जिसने तेरा दर्शन पाया, हर सुख जीवन में आया
सुवत्सल भाव जगावे, सब मिल जयकार लगावे
तारों से सजाई तेरी आरती, हो गुरुवर.....

## प्रसिद्ध की तृष्णा बिना मिलती है सिद्धि व प्रसिद्धि

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(राग : छोटी-छोटी गैया....., भातुकली.....)**

आत्मविशुद्धि ही है मेरी साधना, प्रसिद्धि हेतु नहीं मेरी भावना।
(केवली) तीर्थंकरों से मुझे शिक्षा मिलती, आत्मविशुद्धि से सिद्धि मिलती।। (1)
श्री शांतिनाथ कुंथुनाथ अरहनाथ, तीन पदवी धारी भी हुए विरक्त।
आत्मविशुद्धि से बने वे सिद्ध, जिससे वे पूजनीय बने प्रसिद्ध।। (2)
ख्याति पूजा प्रसिद्धि भोग को त्यागे, संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागे।
आत्मविशुद्धि से आत्मशक्ति भी बढ़ी, अनंत ज्ञानी बने प्रसिद्धि मिली।। (3)
प्रसिद्धि हेतु उन्होंने कुछ न किया, समय शक्ति का न दुरुपयोग किया।
ईर्ष्या द्वेष घृणा प्रतिस्पर्द्धा को त्यागे, (अन्य को) प्रभावित करने का भाव भी त्यागे।। (4)
पूजनीय व आदरणीय सहज हुए, आनुसंग रूप से ये सब मिले।
ऐसा ही मेरे भाव-व्यवहार साधना, 'कनकनन्दी' की अन्य नहीं कामना।। (5)

# मेरी (आचार्य कनकनन्दी) की प्रतिज्ञा, ससंघ के नियम व कारण

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : तेरे प्यार का** आसरा.....)

ब्रह्मचारी क्षुल्लक मुनि दीक्षा में, व्रत लिया हूँ मैं गुरु साक्षी में।
सम्मेदाचल (1988) में ली ग्यारह प्रतिज्ञाएँ, बहु अवसर पर बहु प्रतिज्ञाएँ।।

**(1) जन्म जयन्ती नहीं मनाने के कारण**

जन्म-जरा-मरण नाश के लिए, साधु मैं बना हूँ (मैं) मोक्ष के लिए।
अतः जन्म जयन्ती नहीं मानता हूँ, दीक्षादि जयन्ती भी नहीं मानता हूँ।। (1)

**(2) पूर्व गृहस्थ सम्बन्ध त्याग के कारण**

गृहत्यागी ब्रह्मचारी जब से बना हूँ, गृहस्थ अवस्था से विरक्त हुआ हूँ।
क्षुल्लक की ग्यारह प्रतिमा धरा हूँ, अनुमत उद्दिष्ट भी गृह से त्यागा हूँ।। (2)
दिगम्बर साधु-व्रत जब से धरा हूँ, अलौकिक अनागार आचार धरा हूँ।
नवीन नामकरण गुरु ने किया है, गृहस्थ अवस्था के संबंध/(मोह) त्यागा है।। (3)
पंचपरमेष्ठी ही बन्धु है मेरे, वैश्विक कुटुम्ब के विचार मेरे।
रत्नत्रय ही है वैभव मेरे, मोक्ष महल ही है मकान मेरे।। (4)

**(3) याचना, भौतिक निर्माण आदि नहीं करने का कारण**

मुमुक्षु-भिक्षुक हूँ मैं नहीं भिखारी, सर्वपरिग्रहत्यागी साम्य धारी।
अतः मैं याचना या चन्दा न करूँ, भौतिक निर्माण हेतु भी कुछ न करूँ।। (5)

**(4) प्रसिद्धि आदि नहीं चाहने का कारण**

**(6) ढोंग पाखण्ड-दबाव प्रलोभन आदि से दूर रहने के कारण**

आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र-धर्म, इससे विपरीत होता अधर्म।

ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर-दंभ को त्यागा, दबाव प्रलोभन भय को त्यागा।। (8)

**(7) पत्रिका विज्ञापन आदि नहीं करने के कारण**

पत्रिका विज्ञापन या निमंत्रण, धन-जन-मान व दिखावा काम।

माईक-मंच व पण्डाल तामझाम, नौकर चौका व गाड़ी सामान।। (9)

इत्यादि कार्य हेतु मैं नहीं कहता, अनावश्यक हेतु मना करता।

सहज आगमोक्त जो कार्य होता, निस्पृह-समता से मैं प्रवृत्त होता।। (10)

**(8) निस्पृह वृत्ति के कारण**

कतृत्व वर्चस्व व प्रसिद्धि हेतु, कोई न काम करूँ संक्लेश हेतु।

निस्पृह आकिंचन्य निःस्वार्थ युक्त, काम करूँ मैं कृतज्ञता युक्त।। (11)

संस्थादि का नामकरण मेरा न करता, सहयोगी दाताओं का नाम लिखता।

ऐसा ही पूरा संघ के नियम होते, समता शांति सहयोग से रहते।। (12)

**(9) देश-विदेश में धर्म प्रचार के साधन**

ध्यान-अध्ययन व लेखन प्रवचन, शिविर संगोष्ठी व साहित्य प्रकाशन।

देश-विदेशों में धर्म (ज्ञान) का प्रचार, संघ में होता है सहज प्रचुर।। (13)

स्वेच्छा से सहभागी होते हैं भक्तजन, सहयोग करते वे तन व मन।

समय-श्रम व धन भी लगाते, देश-विदेशों के भक्त ये करते।। (14)

सहज सरल व समता शांति से, सुयोग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल व भाव से।